अलख की ओर

ॐ

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री

आसारामजी बापू के

सत्संग-प्रवचन

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग-प्रवचन

अलख की ओर

प्रास्ताविक

जिनके सान्निध्य मात्र से आदमी की सहजता-सरलता छलकने लगती है, सुषुप्त अलख का आनंद प्रकट होने लगता है, ऐसे सम्प्रेक्षण-शक्ति के प्रदाता, भक्ति, ज्ञान और योग के अनुभवनिष्ठ ज्ञाता पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू की सुमधुर सरिता से कुछ अमृतरस आपके समक्ष प्रस्तुत हैं।

संतों की सहज बोलचाल में सत्य छलकाता हुआ, जिज्ञासुओं के दिलों को झकझोरता हुआ, रामरस से सराबोर करता हुआ, अपने अलख स्वभाव को जगाता हुआ चिन्तन- प्रवाह लिपिबद्ध करके साधकों के करकमलों में अर्पित करने का आशय यही है कि जो पूज्यश्री के प्रत्यक्ष सान्निध्य से लाभान्वित हैं वे पुनः पुनः परमानंद की यात्रा में घर बैठे अग्रसर हो सकें और यहाँ प्रत्यक्ष सान्निध्य में अनुभव का प्रत्यक्ष प्रसाद जिन सज्जनों को नहीं प्राप्त हुआ वे भी इस पुस्तक के द्वारा कुछ इशारे पाकर जीवन की गुत्थियों को खोलकर जीवनदाता का रस, उस अलख पुरुष का आनंद प्राप्त करने में सहभागी हों। अतः इस पुस्तक को बार-बार विचारने से अवश्य लाभ होगा।

सेवा समिति आपकी सेवा में यत्किंचित् सफल हो रही है। इति शिवम्.....

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आत्मानुसंधान

भागवत की कथा करने वाले एक पण्डित कथा के बाद बहुत थक जाते थे। मस्तिष्क भारी-भारी रहता था। काफी इलाज किये लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। श्री घाटवाले बाबा ने उनको ज्ञानमुद्रा में बैठने की विधि बतायी। कुछ ही समय में पण्डित जी को चमत्कारिक लाभ हुआ। ज्ञानमुद्रा से मस्तिष्क के ज्ञानतंतुओं को पुष्टि मिलती है और चित्त जल्दी शांत हो जाता है। आत्म-कल्याण के इच्छुक व ईश्वरानुरागी साधकों को आत्मशांति व आत्मबल प्राप्त करने के लिए, चित्तशुद्धि के लिए यह ज्ञानमुद्रा बड़ी सहायक है। इस मुद्रा में प्रतिदिन थोड़ी देर बैठना चाहिए।

ब्रह्ममुहूर्त की अमृतवेला में शौच-स्नानादि से निवृत्त होकर गरम आसन बिछाकर पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन या सुखासन में बैठ जाओ । 10-15 प्राणायाम कर लो। आन्तर कुम्भक व बहिर्कुम्भक तथा मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध व जालन्धरबन्ध-इस त्रिबन्ध के साथ प्राणायाम हो तो बहुत अच्छा। तदनन्तर दोनों हाथों की तर्जनी यानी पहली उँगली के नाखून को अँगूठों से हल्का सा दबाकर दोनों हाथों को घुटनों पर रखो। शेष तीन उँगलियाँ सीधी व परस्पर जुड़ी रहें। हथेली ऊपर की ओर रहे। गरदन व रीढ़ की हड्डी सीधी। आँखें अर्धोन्मीलित। शरीर अडोल।

अब गहरा श्वास लेकर 'ॐ का दीर्घ गुंजन करो। प्रारम्भ में ध्वनि कण्ठ से निकलेगी। फिर गहराई में जाकर हृदय से 'ॐ...' की ध्वनि निकालो। बाद में और गहरे जाकर नाभि या मूलाधार से ध्वनि उठाओ। इस ध्वनि से सुषुम्ना का द्वार खुलता है और जल्दी से आनन्द प्राप्त होता है। चंचल मन तब तक भटकता रहेगा जब तक उसे भीतर का आनन्द नहीं मिलेगा। ज्ञानमुद्रा के अभ्यास व 'ॐ...' के गुंजन से मन की भटकान शीघ्रता से कम होने लगेगी।

ध्यान में बैठने से पहले जो कार्य करना नितान्त आवश्यक हो उसे पूरा कर लो। ध्यान के समय जो काम करने की कोई जरूरत न हो उसका चिन्तन छोड़ दो। चिन्तन आ जाये तो 'ॐ...' का पावन गुंजन करके उस व्यर्थ चिन्तन से अपना पिण्ड छुड़ा लो।

वर्त्तमान का आदर करने से चित्त शुद्ध होता है। भूत-भविष्य की कल्पना छोड़कर वर्त्तमान में स्थित रहना यह वर्त्तमान का आदर हुआ। निज अनुभव का आदर करने से चित्त की अशुद्धि दूर होती है। निज अनुभव यह है कि जो भी काम होते हैं , सब वर्त्तमान में ही किया जाता है।

पीछे की कल्पना करो तो भूतकाल और आगे की कल्पना करो तो भविष्य काल। भूत और भविष्य दोनों वर्त्तमान काल में ही सिद्ध होते हैं। वर्त्तमानकाल की सिद्धि भी 'मैं हूँ' इस अनुमति पर निर्भर है।

'मैं हूँ' यह तो सबका अनुभव है लेकिन 'मैं कौन हूँ' यह ठीक से पता नहीं है। संसार में प्रायः सभी लोग अपने को श रीर व उसके नाम को लेकर मानते हैं कि 'मैं अमुक हूँ ... मैं गोविन्दभाई हूँ।' नहीं.... यह हमारी वास्तविक पहचान नहीं है। अब हम इस साधना के जरिये हम वास्तव में कौन हैं .... हमारा असली स्वरूप क्या है .... इसकी खोज करेंगे। अनन्त की यह खोज आनन्दमय यात्रा बन जायेगी।

मंगलमय यात्रा पर प्रस्थान करते समय वर्त्तमान का आदर करो। वर्त्तमान का आदर करने से आदमी भूत व भविष्य की कल्पना में लग जाना यह मन का स्वभाव है। अतः ज्ञानमुद्रा में बैठकर संकल्प करो कि अब हम 'ॐ...' की पावन ध्वनि के साथ वर्त्तमान घड़ियों का पूरा आदर करेंगे। मन कुछ देर टिकेगा.... फिर इधर-उधर के विचारों की जाल बुनने लग जायेगा। दीर्घ स्वर से 'ॐ...' का गुंजन करके मन को खींचकर पुनः वर्तमान में लाओ। मन को प्यार से, पुचकार से समझाओ। 8-10 बार 'ॐ....' का गुँजन करके शांत हो जाओ। वक्षःस्थल के भीतर तालबद्ध रूप से धड़कते हुए हृदय को मन से निहारते रहो .... निहारते रहो..... मानों शरीर को जीने के लिए उसी धड़कन के द्वारा विश्व-चैतन्य से सत्ता-स्फूर्ति प्राप्त हो रही है। हृदय की उस धड़कन के साथ 'ॐ... राम.... ॐ....राम....' मंत्र का अनुसंधान करते हुए मन को उससे जोड़ दो। हृदय की धड़कन को प्रकट करने वाले उस सर्वव्यापक परमात्मा को स्नेह करते जाओ। हमारी शक्ति को क्षीण करने वाली, हमारा आत्मिक खजाना लूटकर हमें बेहाल करने वाली भूत- भविष्य की कल्पनाएँ हृदय की इन वर्तमान धड़कनों का आदर करने से कम होने लगेंगी। हृदय में प्यार व आनंद उभरता जायेगा। जैसे मधुमक्खी सुमधुर सुगंधित पुष्प पाकर रस चूसने के लिए वहाँ चिपक जाती है, शहद का बिन्दु पाकर जैसे चींटी वहाँ आस्वाद लेने के लिए चिपक जाती है वैसे ही चित्तरूपी भ्रमर को परमात्मा के प्यार से प्रफुल्लित होते हुए अपने हृदय कमल पर बैठा दो , दृढ़ता से चिपका दो।

सागर की सतह पर दौड़ती हुई तरंगे कम हो जाती हैं तो सागर शांत दिखता है। सागर की गरिमा का एहसास होता है। चित्तरूपी सागर में वृत्तिरूपी लहरियाँ दौड़ रही हैं। वर्त्तमान का आदर करने से वे वृत्तियाँ कम होने लगेंगी। एक वृत्ति पूरी हुई और दूसरी अभी उठने को है , उन दोनों के बीच जो सन्धिकाल है वह बढ़ने लगा। बिना वृत्तियों की अनुपस्थिति में भी हम हैं। इस अवस्था में केवल आनंद- ही-आनंद है। वही हमारा असली स्वरूप है। इस निःसंकल्पावस्था का आनन्द बढ़ाते जाओ। मन विक्षेप डाले तो बीच- बीच में ॐ का प्यार गुंजन करके उस आनंद-सागर में मन को डुबाते जाओ। जब ऐसी निर्विषय , निःसंकल्प अवस्था में आनंद आने लगे तो समझो यही आत्मदर्शन हो रहा है क्योंकि आत्मा आनन्दस्वरूप है।

यह आनन्द संसार के सुख या हर्ष जैसा नहीं है। संसार के सुख में और आत्मसुख में बड़ा फासला है। संसार का सुख क्रिया से आता है , उपलब्ध फल का भोग करने से आता है जबकि आत्मसुख तमाम स्थूल- सूक्ष्म क्रियाओं से उपराम होने पर आता है। सांसारिक सुख में भोक्ता हर्षित होता है और साथ ही साथ बरबाद होता है। आत्मसुख में भोक्ता शांत होता है और आबाद होता है।

इस आत्म- ध्यान से , आत्म-चिन्तन से भोक्ता की बरबादी रुकती है। भोक्ता स्वयं आनंदस्वरूप परमात्मामय होने लगता है , स्वयं परमात्मा होने लगता है। परमात्मा होना क्या है.... अनादि काल से परमात्मा था ही, यह जानने लगता है।

तरंगे सागर में लीन होने लगती है तो वे अपना तरंगपना छोड़कर जलरूप हो जाती है। हमारी तमाम वृत्तियों का मूल उदगम्- स्थान.... अधिष्ठान परमात्मा है। 'हम यह शरीरधारी हैं .... हमारा यह नाम है.... हमारी वह जाति है..... हमारे ये सगे-सम्बन्धी हैं.... हम इस जगत में रहते हैं....' ये तमाम प्रपंच हमारी वृत्तियों के खेल हैं। हमारी वृत्ति अपने मूल उदगम्- स्थान आनन्दस्वरूप परमात्मा में डूब गई , लीन हो गई तो न यह शरीर है न उसका कोई नाम है , न उसकी कोई जाति है , न उसके कोई सगे सम्बन्धी हैं और न कोई जगत ही है। केवल आनंदस्वरूप परमात्मा ही परमात्मा है। वह परमात्मा मैं हूँ। एक बार यह सत्य आत्मसात हो गया, भली प्रकार निजस्वरूप का बोध हो गया, फिर चाहे करोड़ों-करोड़ों वृत्तियाँ उठती रहें, करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्ड बनते रहें..... बिगड़ते रहें फिर भी उस बुद्ध पुरुष को कोई हानि नहीं। वह परिपक्व अवस्था जब तक सिद्ध न हो तब तक आत्मध्यान का अभ्यास करते रहो।

पानी में जितनी तरंगे कम हो गईं उतनी पानी में समाहित हो गईं। हमारी वृत्तियाँ जितनी शांत हुईं उतनी परमात्मा से मिल गईं , स्वरूप में लीन हो गईं , उतना आत्मस्वरूप प्रकट हो गया।

ठीक से अभ्यास करने पर कुछ ही दिनों में आनन्द और अनुपम शांति का एहसास होगा। आत्मबल की प्राप्ति होगी। मनोबल व शांति का एहसास होगा। आत्मबलकी प्राप्त होगी। मनोबल व बुद्धिबल में वृद्धि होगी। चित्त के दोष दूर होंगे। क्रियाजनित व फलभोगजनित सुख के पीछे जो भटकाव है वह कम हो जायेगी। अपने अस्तित्व का बोध होने मात्र से आनंद आने लगेगा। पाप नष्ट हो जायेंगे। आत्मदेव में स्थिति होने लगेगी। परमात्म- साक्षात्कार करने की योग्यता बढ़ जायेगी।

ध्यान-भजन-साधना से अपनी योग्यता ही बढ़ाना है। परमात्मा एवं परमात्मा से अभिन्नता सिद्ध किये हुए सदगुरु को आपके हृदय में आत्म- खजाना जता देने में कोई देर नहीं लगती। साधक को अपनी योग्यता विकास करने भर की देर है।

प्रधानमंत्री का चपरासी उसको प्रसन्न कर ले, खूब राजी कर ले फिर भी प्रधानमंत्री उसको कलेक्टर नहीं बना सकता क्योंकि उसकी योग्यता विकसित नहीं हो पायी है। स्कूल का पूरा ट्रस्टीमण्डल भेड़ चराने वाले किसी अहीर पर राजी हो जाय , उसको निहाल करना चाहे फि र भी उसको स्कूल का आचार्य नहीं बना सकता।

त्रेता युग में राजा मुचकुन्द गर्गाचार्य के दर्शन सत्संग के फलस्वरूप भगवान का दर्शन पाते हैं। भगवान से स्तुति करते हुए कहते हैं किः "प्रभो ! मुझे आपकी दृढ़ भक्ति दो। " तब भगवान कहते हैं- "तूने जवानी में खूब भोग भोगे हैं, विकारों में खूब डूबा रहा है। विकारी जीवन जीनेवाले को दृढ़-भक्ति नहीं मिलती। मुचकन्द ! दृढ़भक्ति के लिए जीवन में संयम बहुत जरूरी है। तेरा यह क्षत्रिय शरीर समाप्त होगा तो दूसरे जन्म में तुझे दृढ़ भक्ति प्राप्त होगी।"

वही राजा मुचकन्द कलियुग में नरसिंह मे हता हुए। मानना पड़ेगा कि प्रधानमंत्री या परमात्मा किसी पर राजी हो जायँ फिर भी कुछ पाने के लिए, पाया हुआ पचाने के लिए अपनी योग्यता तो चाहिए ही। अपनी वासनावाली वृत्तियाँ बदलती रहेंगी , विषयों में फैलती रहेंगी , तो भगवान या सदगुरु की कृपा हमें परम पद नहीं पहुँ च पायेगी। उस करूणा में वह ताकत तो है लेकिन उसको हजम करने की ताकत हममें नहीं है। मक्खन में ताकत है लेकिन हमें वह हजम नहीं होता तो हम उसका लाभ नहीं उठा पाते। उसको हजम करने के लिए हमें व्यायाम करना होगा, परिश्रम करना होगा। इसी प्रकार सदगुरु या परमात्मा का कृपा- अमृत हजम करने के लिए हमें साधना द्वारा योग्यता विकसित करनी होगी।

अपने पुण्यों का प्रभाव कहो चाहे परमात्मा की कृपा कहो, हमारा परम सौभाग्य खुल रहा है कि हम ब्रह्मचिन्तन के मार्ग की ओर अभिमुख हो रहे हैं।

व्यर्थ के भोगों से बचने के लिए परोपकार करो और व्यर्थ चिन्तन से दूर रहने के लिए ब्रह्मचिन्तन करो। व्यर्थ के भोगों और व्यर्थ चिन्तन से बचे तो ब्रह्मचिन्तन करना नहीं पड़ेगा, वह स्वतः ही होने लगेगा। आगे चलकर ब्रह्मचिन्तन पूर्णावस्था में पहुँचकर स्वयं भी पूरा हो जायेगा। ब्रह्म-परमात्मा में स्थिति हो जायेगी। **ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।** ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्मवेत्ता ब्रह्ममय हो जाता है। तरंग का तरंगपना विलीन होने पर जलरूप रह जाता है। वह अपना सहज स्वरूप प्राप्त कर लेती है।

रामायण में कहा हैः

मम दर्शन फल परम अनूपा।
जीव पावहिं निज सहज स्वरूपा।।

ब्रह्माभ्यास के लिए ब्रह्ममुहूर्त अर्थात् सुबह 3 बजे के बाद का समय अत्यंत उपयोगी होता है। इस अमृतवेला में प्रकृति के निम्न कोटि के जीव प्रकृति में लीन रहते हैं। समग्र वातावरण में

अपार शांति का साम्राज्य छाया हुआ रहता है। संत , महात्मा, योगी और उच्च कोटि के साधकों के मंगल आध्यात्मिक आन्दोलन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। हमारा चित्तसरोवर भी रात्रि की नींद के बाद शांत बन जाता है। वृत्तियों की दौड़ कम हो जाती है। ऐसी अमृतवेला में शौच-स्नानादि से निवृत्त होकर प्राणायाम करके ज्ञानमुद्रा में बैठकर ब्रह्माभ्यास किया जाय , मन को ब्रह्मचिन्तन में लगाया जाय तो साधक शीघ्र ही सिद्ध हो सकता है , आत्मानन्द में मग्न हो सकता है। ब्रह्माभ्यास तो कहीं भी करें , किसी भी समय करें, लाभ होता है लेकिन ब्रह्ममूहूर्त की तो बात ही निराली है।

ब्रह्माभ्यास में, ब्रह्मचिन्तन में, आत्म-ध्यान में मन शांत नहीं होता तो मन जो सोचता है, जहाँ जाता है, उसको देखो। चंचल मन की चंचलता को देखोगे तो मन चंचलता छोड़कर शांत होने लगेगा। प्राणायाम का अभ्यास छोड़कर फिर जो स्वाभाविक श्वासोच्छवास चलते हैं उनको देखते रहो.... निहारते रहो तो भी मन शांत होने लगेगा। मन ज्यों शांत होगा त्यों आनंद आने लगेगा। जब ऐसा आनंद आने लगे तब समझो आत्मदर्शन हो रहा है।

देवी-देवताओं के दर्शन का फल भी सुख है। देवी- देवता राजी होंगे तो वरदान देंगे। उनके वरदान से भोग की वस्तुएँ मिलेंगी। वस्तु के भोग से सुख ही तो चाहते हैं। उस संयोगजन्य भोग-सुख से निराला आत्म-सुख ब्रह्माभ्यास से मिल रहा है। 'आत्मा आनंदस्वरूप है। वह आत्मा ही मैं हूँ। मेरा मुझको नमस्कार है। ' इस प्रकार अपने आपको धन्यवाद देते जाओ .... आनंदमय होते जाओ। हजारों-हजारों देवी-देवताओं को मनाते आये हो... अब थोड़ा अपने आपको मना लो। हजारों देवी-देवताओं को पूजते आये हो.... अब आत्मध्यान के द्वारा अपने आत्मदेव को पूज लो। 'मैं आनंदस्वरूप आत्मा हूँ .... ॐ आनंद ! ॐ आनंद...! ॐ आनंद....!' इस प्रकार भाव बढ़ाते जाओ। बीच-बीच में मन विक्षेप डाले , इधर-उधर दौड़े तो ॐ की पावन ध्वनि करके मन को वापस लौटा लो।

सामवेद का छान्दोग्य उपनिषद् कहता है कि जिस आनंद को तू खोज रहा है वह आनंद तू ही है। **तत्त्वमसि।** वह तू है। तू पहले आनंदस्वरूप आत्मा था अथवा भविष्य में होगा ऐसी बात नहीं, अभी भी तू वही है। यह वेदवचन का आखिरी फैसला है। आध्यात्मिक जगत के जाने-माने शास्त्र, पुराण, बाइबिल, कुरान आदि सब बाद में हुए हैं और किसी न किसी व्यक्ति के द्वारा रचे गये हैं, जबकि वेद अनादि काल से हैं- **तत्त्वमसि।** वह तू है। उस आनंदस्वरूप सच्चिदानंदघन विश्वचैतन्य और तुझमें कोई भेद नहीं।

इन वेदवचनों को केवल मान लो नहीं , उनकी सत्यता का अनुभव करते चलो। 'मैं वह आनंदस्वरूप आत्मा हूँ...' चार वेद के चार महावाक्य हैं-

प्रज्ञानं ब्रह्म। अयं आत्मा ब्रह्म। अहं ब्रह्मास्मि। तत्त्वमसि। इन वेदवाक्यों का तात्पर्य यही है।

नानकदेव भी कहते हैं-

सो प्रभ दूर नहीं... प्रभ तू है।
सो साहेब सद सदा हजूरे।
अन्धा जानत ता को दूरे।।

तुलसीदास जी कहते हैं-

घट में है सूझे नहीं, लानत ऐसे जिन्द।
तुलसी ऐसे जीव को, भयो मोतियाबिन्द।।

गहरा श्वास लेकर ॐ का गुंजन करो.... बार-बार गुंजन करो और आनन्दस्वरूप आत्मरस में डूबते जाओ। कोई विचार उठे तो विवेक जगाओ कि , मैं विचार नहीं हूँ। विचार उठ रहा है मुझ चैतन्यस्वरूप आत्मा से। एक विचार उठा .... लीन हो गया.. दूसरा विचार उठा... लीन हो गया। इन विचारों को देखने वाला मैं साक्षी आत्मा हूँ। दो विचारों के बीच में जो चित्त की प्रशांत अवस्था है वह आत्मा मैं हूँ। मुझे आत्मदर्शन की झलक मिल रही है ....। ॐ आनंद.... खूब शांति। मन की चंचलता मिट रही है.... आनंदस्वरूप आत्मा में मैं विश्राम पा रहा हूँ।

वाह वाह ! वाह मेरे प्रभु....! वाह मेरे पुण्य...! वाह मेरे सदगुरु...! इसी आनंद के लिए सारे देव, दानव और मानव लालायित हैं। इसी आनंद की खोज में कई जन्मों से मैं भी भटक रहा था। अब पता चला कि आनंद तो मेरा आत्मस्वरूप है। वाह वाह...!

चित्त में प्रशांति बढ़ रही है। 'रोम-रोम पुलकित हो रहे हैं.... पवित्र हो रहे हैं।'

आप जिन आत्मज्ञानी, आत्म-साक्षात्कारी महापुरषों को अपने सदगुरु मानते हो उनको पूरे प्राणों से.... पूरे हृदय से प्यार करते जाओ , धन्यवाद देते जाओ। इस पवित्र प्रेम की राह पर चलते-चलते आप बहुत गहरे पहुँच जाओगे.... अपने असली घर के द्वार को देख लोगे। अपने घर में, निज स्वरूप में पहुँचे हुए महापुरुषों को प्यार करते-करते आप भी वहीं पहुँच जाओगे।

अपने को धन्यवाद दो कि हमने प्रभु के दर्शन नहीं किये लेकिन जिनके हृदय में प्रभु पूर्ण चैतन्य के साथ प्रकट हुए हैं ऐसे संतों का दर्शन करने का सौभाग्य हमें मिल रहा है। ऐसे महापुरुषों के बारे में कबीरजी कहते हैं-

अलख पुरुष की आरसी, साधू का ही देह।
लखा जो चाहे अलख को, इन्हीं में तू लख लेह।।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

सुख-दुःख का सदुपयोग

जीवन में उतार चढ़ाव आने पर, खट्टे-मीठे प्रसंग आने पर लोग दुःखी हो जाते हैं। अपने को पापी समझकर वे दुःखी हो रहे हैं। यह बड़ी गलती है। जीवन के विकास के लिए दुःख नितान्त जरूरी है। जीवन के उत्थान के लिए दुःख अति आवश्यक है।

सुख में विवेक सोता है और दुःख में विवेक जागता है। लेकिन दुःख में घबड़ाने से आदमी दुर्बल हो जाता है। दुःख का का सदुपयोग करने से आदमी बलवान् हो जाता है।

मनुष्य जब दुःख का सदुपयोग करना सीख लेता है तो दुःख का कोई मूल्य नहीं रहता। जब सुख का सदुप योग करने लगता है तब सुख का कोई मूल्य नहीं रहता। सदुपयोग करने से सुख-दुःख का प्रभाव क्षीण होने लगता है और सदुपयोग करने वाला उनसे बड़ा हो जाता है। उपयोग करने वाले का मूल्य बढ़ जाता है और उपयोग में आने वाली जड़ चीज का मूल्य कम हो जाता है।

दुःख का सदुपयोग करने से दुःख छोटा हो जायेगा फिर वह आपको उतना दुःख नहीं देगा। सुख का सदुपयोग करने से सुख छोटा हो जायेगा फिर वह आपको बाँध नहीं सकेगा। नासमझी से दुःख आयेगा तो वह आपको कमजोर बना देगा, सुख आयेगा तो बन्धन में डालेगा। एक डराकर कमजोर करता है दूसरा बाँधकर कमजोर करता है। दोनों से अहित ही होता है। आपका तन, आपका मन, आपका हृदय - इन सुख-दुःख रूपी राक्षसों के ताबे में चला जाता है। ये सुख-दुःख असुर हैं। असुर माने दैत्य। सुर माने देवता।

हम लोग पुराणों की कथाएँ सुनते हैं। ध्रुव तप कर रहा था। असुर लोग डराने के लिए आये लेकिन ध्रुव डरा नहीं। सुर लोग विमान लेकर प्रलोभन देने के लिए आये लेकिन ध्रुव फिसला नहीं। वह विजेता हो गया। ये कहानियाँ हम सुनते हैं, सुना भी देते हैं लेकिन समझते नहीं कि ध्रुव जैसा नन्हा-मुन्ना दुःख से घबड़ाया नहीं और सुख में फिसला नहीं। उसने दोनों का सदुपयोग कर लिया और अमर हो गया। सुख- दुःख का सदुपयोग कर लिया तो ईश्वर उसके सम्मुख प्रकट हो गये। सारी परिस्थितियाँ उसके चरण तले आ गई।

हम क्या करते हैं ? जरा-सा दुःख पड़ता है तो दुःख देने वाले को लांछन लगाते हैं, परिस्थितियों को दोष देते हैं अथवा अपने को पापी समझकर अपने को ही कोसते हैं। कभी आत्महत्या करने की भी सोचते हैं। कुछ पवित्र होंगे तो किसी संत- महात्मा के पास जाते हैं- 'बाबा ! अब बहुत हो गया। हमसे दुःख सहा नहीं जाता ... अब सहा नहीं जाता। हम पर रहम करो। हमारा दुःख दूर कर दो। अब हम रह नहीं सकते... यह दुःख सह नहीं सकते।'

'...दुःख सहन नहीं होता... सहन नहीं होता...' बोलते-बोलते अभी तक सहते ही रहे हैं न? संत-महात्मा कृपालु होते हैं। दुःख हटाने की अपेक्षा वे आपकी योग्यता बढ़ा देते हैं। दुःख हटाने की अपेक्षा दुःख का सदुपयोग करने की कला सिखा देना यह ऊँची बात है।

बच्चा चलते-चलते गिर पड़ा। उसको चोट लगी। आपने वात्सल्य से पुचकारकर उसको उठा लिया। आपकी सहानुभूति है। आपने उसको दुःख से बचा लिया लेकिन उसको कमजोर कर दिया। आपने उसे उठा लिया न? उसको स्वयं उठने नहीं दिया। उसको गिरते देखकर बोलतेः 'अरे कुछ नहीं हुआ। खड़ा हो जा... शाबाश...। देख वह क्या है?' ऐसी युक्ति द्वारा वह चोट भूल जाता और अपने आप खड़ा हो जाता तो तुम्हारी गैरहाजिरी में भी वह खड़ा हो सकता था अतः उसकी शक्ति बढ़ा दो ताकि गिरे नहीं।

योगवाशिष्ठ में आता है कि 'चिन्तामणि' के आगे जो चिन्तन करो वह चीज मिलती है लेकिन सत्पुरुष के आगे जो चीज माँगोगे वही चीज वे नहीं देंगे, मगर जिसमें तुम्हारा हित होगा वही देंगे। कामधेनु के आगे जो कामना करोगे वह पदार्थ देगी लेकिन उससे आपका भविष्य सुधरता है या बिगड़ता है, आपकी आसक्ति बढ़ती है या घटती है यह कामधेनु की जवाबदारी नहीं। उसकी यह जिम्मेदारी नहीं है लेकिन सदगुरु आपके हित-अहित के बारे में भली प्रकार निगरानी रखते हैं।

किसी देवता को आप रिझाओ, विधि-विधान से पूजन करो, सामग्री अर्पण करो, भोग धरो और किसी वस्तु के लिए याचना करो तो वे देवता प्रसन्न होकर आपकी माँगी हुई चीज दे देंगे लेकिन वह चीज पाकर आप आत्माविमुख हो रहे हैं कि आत्मविमुख होकर भोग में फँस रहे हैं यह उनको सोचने की जरूरत नहीं है। आपकी माँगी हुई चीज आपको दे दी, बस।

नादान बालक दस रूपये की एक नोट लेकर दुकान पर पहुँचे, दुकान की विभिन्न चीजें देखकर दुकानदार से रंग-बिरंगे चित्रोंवाले बड़े-बड़े पटाखे, एटम बम, मिर्च का लाल लाल पावडर माँगे, सफेद सफेद सोडाखार माँगे तो दुकानदार उसे ये चीजें देगा लेकिन वह दुकानदार यदि उस बालक का पिता है तो वह पैसे भी ले लेगा और वस्तुएँ भी नहीं देगा। उसको पूरा अधिकार है और वह बालक का पूरा हितैषी है।

ऐसे ही जो सत्पुरुष हैं वे आपके सत्कार, आपकी पूजा स्वीकार कर लेंगे लेकिन आप यदि पटाखे जैसी वस्तुएँ माँगेगे तो नहीं देंगे। आपके कल्याण के लिए जो उचित होगा वही देंगे। संभव है आपके जीवन के उत्थान के लिये वे आपको कटु या अपमानजनक वचन कह दें, आपको डाँट भी दें।

दुःख के सदुपयोग से जीवन की शक्ति का विकास होता है और सुख के सदुपयोग से जीवन में सजगता आती है, जीवनतत्त्व की जागृति होती है। दुःख से घबड़ाने से कमजोरी बढ़ती है और सुख में फँस जाने से विलासिता बढ़ती है। सुख बाँधकर कमजोर करता है और दुःख

डराकर कमजोर करता है। ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसके पास सुख और दुःख न आते हों। धेनकासुर, बकासुर, अघासुर, ईसा-मूसा की कथाएँ तो बहुत सुनी होंगी। अब यह आपके जीवन की कथा है और इसे जानना अत्यंत जरूरी है।

जीवन में आने वाले सुख-दुःख के प्रसंगों में क्या करना है? सुख-दुःख का उपयोग। सुख-दुःख का उपयोग करने वाला सुख-दुःख का स्वामी बन जाता है। स्वामी को यदि अपना स्वामीपना याद है तो सेवक उसकी आज्ञा में रहते हैं। चाहो जब सेवक को भीतर बुला लो, चाहो जब ऑफिस से बाहर खड़ा कर दो। मर्जी तुम्हारी। उसका उपयोग करने की कला आ गई तो आप स्वामी हो गये।

जैसे चपरासी का उपयोग करते हैं वैसे ही यदि परिस्थितियों का उपयोग करने की कला आ गई तो आप हो गये जीवन्मुक्त..... जीते-जी मुक्त। बाँधते हैं सुख-दुःख। और कौन बाँधता है? ऐसा नहीं कि साड़ी पहन कर कोई माया वहाँ बैठी है, कोई अप्सरा बैठी है वह आपको बाँधेगी। नहीं, सुख-दुःख ही आपको बाँधते हैं।

'अप्सरा' का अर्थ क्या है? 'अप' माने पानी और 'सरा' माने सरकनेवाला। जैसे पानी नीचे की ओर बहता है ऐसे जीवन सुख-दुःख में नीचे की ओर बहता है। सदगुरुओं का ज्ञान तुम्हें ऊपर उठाता है। परिस्थितियाँ हैं सरिता का प्रवाह जो तुम्हें नीचे की ओर घसीटती हैं, सदगुरु हैं 'पम्पिंग स्टेशन' जो तुम्हें हरदम ऊपर उठाते रहते हैं।

हम सुख-दुःखों से परास्त क्यों हो जाते हैं? स्वतंत्र ढंग से जीने की कला हमारे पास नहीं है। ऐसा नहीं है कि हमारे पास अन्न-वस्त्र नहीं है, रूपये-पैसे नहीं हैं, मकान नहीं है इसलिए दुःखी हैं। जिन महापुरुषों को खाने को रोटी नहीं, पहनने को कपड़े नहीं, रहने को घर नहीं वे भी सुखी रह सके। देखो जड़भरतजी का जीवन ! देखो शुकदेवी का जीवन ! आत्मानंद में मस्त ! अब भी, इस समय भी ऐसे महात्मा... ऐसे परम सुख के सम्राट हैं इस वसुन्धरा पर। उनके पास सुख-दुःख का उपयोग करने की, सुख-दुःख के प्रसंगो को नचाने की कला है, समझ है। चीज-वस्तुओं का बाहुल्य होते हुए भी यह समझ अगर हमारे पास नहीं है तो हम सुख-दुःख की परिस्थितियों में उलझ जाते हैं। अगर हमारे पास बढ़िया समझ है तोः

हमें हिला सके ये जमाने में दम नहीं।
हमसे जमाना है जमाने से हम नहीं।।

किसी पंथ में रहे, सम्प्रदाय में रहे, वाड़े में रहे लेकिन जीवन की समस्या का हल नहीं हुआ, उलझन से सुलझन की यात्रा होनी चाहिए वह नहीं हुई तो हम कमजोर ही रहे, दुःखी ही रहे। सुख-दुःख के स्वामी न बन पाये।

दुःखी होने का कारण अगर पाप ही होता , पापी आदमी को ही अगर दुःख मिलता तो भगवान श्रीकृष्ण और भगवान राम के जीवन में दुःख नहीं आने चाहिये लेकिन उनके आगे दुःख की घटनाओं की, विकट परिस्थितियों की कमी नहीं। फिर भी वे सदा सम रहे। राज्यतिलक की शहनाइयाँ बजीं और बनवास में जाना पड़ा।

श्रीकृष्ण ने भी अपने जीवन में ऐसा कौन सा दुःख है जो नहीं देखा ! दुष्टों के कारागृह में जन्म हुआ, जन्म के तुरन्त बाद उस सुकोमल अवस्था में यमुनाजी की भयंकर बाढ़ वह उफनती लहरों के बीच टोकरी में छिपाकर पराये घर में ले जाकर रख दिया गया। राजघराने के लड़के होने के बावजूद गौएँ चराकर रहना पड़ा , चोरी करके मक्खन- मिश्री खाना पड़ा। कभी पूतना राक्षसी पयःपान में छुपा कर जहर पिलाने आ गई तो कभी कोई दैत्य छकड़े से दबाने या आँधी में उड़ाने चला आया। कभी बछड़े में से राक्षस निकल आया तो कभी विशाल गोवर्धन पर्वत को हाथ पर उठाकर खड़े रहना पड़ा। अपने सगे मामा कंस के कई षड्यंत्रों का सामना करना पड़ा और अंत में उसे अपने हाथों से ही मारना पड़ा। उनके माँ- बाप को भी जेल के दारूण सुख सहने पड़े। जरासन्ध से युद्ध के दौरान जब श्रीकृष्ण द्वारका की ओर भागे तो पाँव में न तो पादुका थी और न ही सिर पर पगड़ी थी। केवल पीताम्बर ओढ़े नंगे पाँव भाग- भाग कर पहाड़ों में छिपते- छिपाते, सुरक्षित निवास के लिए कई स्थानों को ढूँढते- ढूँढते अन्त में समुद्र के बीच में जाकर बस्ती बसाना पड़ा। उनके पारिवारिक जीवन में भी कई विघ्न- बाधाएँ आती रहीं। बड़े भाई बलरामजी को मणि को लेकर श्रीकृष्ण पर अविश्वास हो गया था। पत्नियों में भी आये दिन ईर्ष्या- जलन व झगड़े- टंटे चलते ही रहते थे। बाल- बच्चों एवं पौत्रों में से कोई भी आज्ञाकारी नहीं निकला। एक ओर , जहाँ श्री कृष्ण साधु- संतों का इतना आदर- सत्कार किया करते थे वहीं पर उनके पुत्र-पौत्र संत-पुरुषों का मखौल उड़ाया करते थे। और भी अनेकाअने क विकट परिस्थितियाँ उनके कदम- कदम पर आती रहीं लेकिन श्रीकृष्ण हरदम मुस्कराते रहे और प्रतिकूलताओं का सदुपयोग करने की कला अपने भक्तों को सिखलाते गये।

मुस्कुराकर गम का जहर जिनको पीना आ गया।
यह हकीकत है कि जहाँ में उनको जीना आ गया।।

सुख और दुःख हमारे जीवन के वि कास के लिए नितान्त आवश्यक है। चलने के लिए दायाँ और बायाँ पैर जरूरी है, काम करने के लिए दायाँ और बायाँ हाथ जरूरी है , चबाने के लिए ऊपर का और नीचे का जबड़ा जरूरी है वैसे ही जीवन की उड़ान के लिए सुख व दुःखरूपी दो पंख जरूरी हैं। सुख- दुःख का उपयोग हम नहीं कर पाते , सुख-दुःख से प्रभावित हो जाते हैं तो जीवन पर आत्मविमुख होकर स्थूल- सूक्ष्म-कारण शरीर से बँधे ही रह जाते हैं। अपने मुक्त स्वभाव का पता नहीं चलता।

इसलिए रोटी की जितनी जरूरत है , कपड़ों की जितनी जरूरत है , मकान की जितनी जरूरत है उससे हजार गुनी ज्यादा जरूरत है सच्ची समझ की। सच्ची समझ के बिना हमारा जीवन सुख का और दुःखों का शिकार हुआ जा रहा है। लोग बोलते हैं-

'बापू ! बेटा नहीं है इसलिए दुःख हो रहा है। रोना आता है....!'

किसी का बेटा नहीं है तो दुःख हो रहा है , किसी को पति नहीं है , पत्नी नहीं है, मकान नहीं है तो दुःख हो रहा है लेकिन जिनके आगे हजारों बेटों की, हजारों पतियों की, हजारों पत्नियों की, हजारों मकानों की , हजारों दुकानों की कोई कीमत नहीं है ऐसे परमात्मा हमारे साथ हैं , भीतर हैं फिर भी आज तक उनकी पहचान नहीं हुई इस बात का दुःख नहीं होता। आनंदस्वरूप अन्तर्यामी परमात्मा का अनुभव नहीं होता इसके लिए रोना नहीं आता।

जो आदमी जितना सुख चाहता है , जितनी तीव्रता से चाहता है उतना दुःखी होता है। दुःख का सदुपयोग करने की कला नहीं आयी तो कमजोर होता है। फिर देवी देवताओं को मनाता है, मंदिरों में दौड़ता है , मस्जिदों में दौड़ता है , गिरजाघरों में गिड़गिड़ाता है। मंदिर मस्जिद में जाने का फल यही है कि कोई आपके दिल का मन्दिर खोल दे, आपके हृदय का द्वार खटखटा दे, आपके भीतर छुपी हुई अथाह शक्ति का दीदार आपको करा दे। फिर बारहों मेघ गर्जें , प्रलयकाल के सूर्य तपें, आपका बाल बाँका नहीं होगा। आप ऐ सी चीज हैं आपको पता नहीं। पूरी सृष्टि का प्रलय हो जाय तब भी आपका कुछ नहीं बिगड़ता। सारी दुनिया के लोग आपके विरोध में खड़े हो जाएँ, सारे देवी देवता कोपायमान हो जायें फिर भी आपका कुछ नहीं बिगड़ सकता ऐसी महान् विभूति आप हैं, लेकिन...? आपको पता नहीं।

वेदान्त की बात आपके अनुभव में आने से सारे दुःख ओस की बूँद की तरह लुप्त हो जायेंगे। मैं नितान्त सत्य कह रहा हूँ। यह बात समझने से ही परम कल्याण होगा।

अपनी समझ जब तक इन्सान को आती नहीं।

दिल की परेशानी तब तक जाती नहीं।।

......तो कृपानाथ ! अपने ऊपर कृपा करो। सुख का भी स दुपयोग और दुःख का भी सदुपयोग। सुख-दुःख आपके दास हो जायें। आप उनके स्वामी हो जाओ। फिर , आप कौन हो यह जानने की जिज्ञासा जागृत होगी। जीवन की जिज्ञासा में जीवन के कल्याण के बीज निहित हैं। कल्याण भी ऐसा किः

रिद्धिसिद्धि जाँ के आगे हाथ जोड़ खड़ी है।
सुन्दर कहत ताँ के सब ही गुलाम हैं।।

मनुष्य के पास क्या नहीं है? उसके पास क्या क्या है यह प्रश्न नहीं है। अपितु उसके पास क्या नहीं है यह प्रश्न है। आपको लगेगा कि अपने पास बँगला नहीं है , गाड़ी नहीं है, फ्रिज नहीं

है। अरे खाक ! अभी आपने अपना आपा देखा ही कहा हैं ? अपने मन से जरा ऊपर उठो, अपने आत्म-सिंहासन पर जा बैठो तो पता चले असलियत का।

....और जिनके पास बँगला है , गाड़ी है, फ्रिज है उनको पूछोः 'क्या हाल है ? सुखी हो?' रोज के चालीस-पचास हजार रूपये कमाने वाले लोगों को मैं जानता हूँ और रोज के तीस रूपये लाने वाले लोगों को भी मैं जानता हूँ। दोनों रोटी खाते हैं। दोनों को मरते देखा है और दोनों की राख एक जैसी। फर्क क्या पड़ा?

मेरा कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि तीस रूपये कमाने वाला अच्छा है और पचास हजार रूपये कमाने वाला बुरा है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि दोनों ने अपने आपसे अन्याय कर लिया। एक दुःख में फँसा तो दूसरा सुख में बँधा। दोनों बन्धन बनाकर चले गये , बन्धन काटे नहीं। जीवन की जिज्ञासा खुली नहीं , अपनी महानता के द्वार पर पहुँचे नहीं। दिव्यता का ताला खुला नहीं।

अज्ञानी के रूप में जन्म लेना कोई पाप नहीं , मूर्ख के रूप में पैदा होना कोई पा प नहीं लेकिन मूर्ख बने रहकर सुख-दुःख की थप्पड़े खाना और जीर्ण-शीर्ण होकर मर जाना महा पाप है।

जो चीज मिलती है उसका सदुपयोग नहीं होता तो दुबारा वह चीज नहीं मिलती। मानव देह मिली, बुद्धि मिली और उसका सदुपयोग नहीं किया , सुख-दुःख की लपटों में स्वाहा हो गये तो दुबारा मानव देह नहीं मिलेगी। इसीलिए तुलसीदास जी कहते हैं-

जौ न तरै भवसागर नर समाज अस पाई।
सो कृत निन्दक मन्दमति आतमहन अधोगति जाई।

मानव तन पाकर जो भवसागर नहीं तरता वह क्या कुत्ता होकर तरेगा ? बिल्ला होकर तरेगा? गधा होकर तरेगा कि घोड़ा होकर तरेगा? इन योनियों में तो डण्डे ही खाने हैं।

घोड़ा बन गये। दिन भर गाड़ी खींची। रात को गाड़ीवान् ने पौवा (दारू) पी लिया, नशा कर लिया। चारा-पानी देना भूल गया। नशे में चूर होकर पड़ा रहा। आप सारी रात तड़पते रहे बिना चारा-पानी के। कई रातें ऐसी गुजरती हैं। तब किसको शिकायत करेंगे ? कौन हमें सुनेगा? किसको डाँटेगे? मूक होकर सहन करना ही पड़ेगा। रात को भूखामरी हुई , जन्तु काटे, दिन को कौओं की चोंचें खाओ , गाड़ीवान् के चाबुक खाओ और गाड़ी खींचो। ऐसी एक नहीं 84 लाख योनियाँ हैं। कभी पौधे बन गये। माली ने पानी नहीं दिया तो सूख रहे हैं। बरसाती पौधे बने। वर्षा ऋतु गई तो मुरझा रहे हैं तब क्या करेंगे?

इसलिए सावधान हो जाओ। अपने ऊपर कृपा करो। भोजन मिले न मिले , पानी मिले न मिले, कपड़े मिले न मिले लेकिन जीवन में अच्छी समझ अवश्य मिलनी चाहिये। अच्छी समझ का उपयोग करने का उत्साह अवश्य होना चाहिए। अगर वह उत्सा ह आपमें नहीं होगा तो

भगवान आपका कितना भी मंगल चाहें, सत्पुरुष आपका कितना भी कल्याण चाहें लेकिन आपके उत्साह के बिना वे लाचार हो जाते हैं आपको ऊपर उठाने में। बरसात कितनी भी हो , सूर्य के किरण कितने भी पड़ें लेकिन खेती करने की तड़प आप में नहीं है तो क्या होगा ? धूप व पानी व्यर्थ चले जायेंगे। ऐसे ही शास्त्रकृपा करके अपनी जीवन की खेती में साधना की बुआई नहीं करोगे तो क्या होगा?

मनुष्य सुख-दुःख के थप्पड़े खाता हुआ जी रहा है लेकिन जीवन पर विचार नहीं करता है कि जीता क्यों है?

कमाते क्यों हो? खाने के लिए। खाते क्यों हो ? जीने के लिए। जीते क्यों हो ? कोई पता नहीं। बस, जी रहे हैं। कभी सोचा नहीं कि क्यों जी रहे हैं।

जीते हैं मुक्त होने के लिए। बन्धन कोई नहीं चाहता , पराधीनता कोई नहीं चाहता, दुःख कोई नहीं चाहता, मौत कोई नहीं चाहता। मुक्ति में बन्धन नहीं , मुक्ति में पराधीनता नहीं, मुक्ति में दुःख नहीं, मुक्ति में मौत नहीं। हमारे जीवन की गहरी माँग है पूर्ण सुख , पूर्ण शांति, पूर्ण स्वतन्त्रता। कोई अपूर्ण वस्तु पूर्ण सुख , पूर्ण शांति, पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं दे सकती। संसार की सभी चीजें सीमित हैं। वे आपको असीम सुख , असीम शांति, असीम स्वतंत्रता नहीं दे सकतीं। असीम सुख-शांति-स्वतंत्रता तो असीम आत्मा में निहित है। मनुष्य जितना आत्माभिमुख होता है उतना ये चीजें पाता है और जितना बाह्य अवलम्बनों के आधीन रहता है उतना निराश होता है और थप्पड़ें खाता है।

ग्यारह साल का बालक शरणानन्द भाई- भाभी के साथ रहता था। बालक की सरलता , स्वाभाविकता व कुशलता पर भाई-भाभी दोनों प्रसन्न रहते थे। लाड़-प्यार से लालन-पालन करते थे।

एक दिन इस मेधावी होनहार बालक ने कहाः "पूर्ण प्रेम, पूर्ण सुख व पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए मैं संन्यास लूँगा।"

दुलारे लाल के ये वचन सुनकर भाई-भाभी चौंके। दोनों ने एक साथ पूछाः "फिर हमारे प्यार का होगा? तू हमें इतना आनंद देता है, हम इतना प्यार-दुलार करते हैं, हमारा क्या होगा?"

"हम जब थकेंगे तो एक दूसरे को छोड़कर सो जायेंगे, नींद में भूल जायेंगे इस प्यार को। यह स्नेह का सुख संयोगजन्य है, उपजा हुआ है, परिस्थिति पर निर्भर है। वह छूट जायेगा। जो छूट जानेवाला है उसे ईश्वर के लिए छोड़ दिया तो क्या हुआ?"

यह प्रज्ञावान् बालक आगे जाकर महान् विभूति बना। जे . कृष्णमूर्ति जैसे तत्त्वचिंतक उनसे मिलकर बड़े प्रभावित हुए।

पूर्ण सुख, पूर्ण शांति, पूर्ण प्रेम, पूर्ण ज्ञान अपूर्ण चीजों को ले लेकर जीवन खत्म कर देने पर भी नहीं मिलेगा। बड़े- बड़े राजा-महाराजाओं का जब विवेक जगता , इस बात का पता चल जाता तब वे पूर्ण सुख- शांति पाने के लिए अपना राजपाट छोड़कर जिन्होंने पूर्ण सुख को जाना है, पूर्ण शांति पायी है, पूर्ण ज्ञान को प्राप्त किया है ऐसे महापुरुषों के पास अरण्यों में पहुँच जाते। जिनका विवेक नहीं जगता वे लोग संसार की सामग्रियों से सुखी होने का परिश्रम करते-करते बूढ़े हो जाते हैं और फिर अंत में पछताते हैं कि, 'हाय ! संसार में कोई सार नहीं।'

संसार में परिश्रम अधिक है और सुख अल्प है। वह भी सुख नहीं, सुख का आभास मात्र। The Young persons say, "Life is full of joys'' but the wise persons say, "Life is full of sorrows."

जवान बोलते हैं कि जिन्दगी मजा लेने के लिए है और बुजुर्ग लोग बोलते हैं कि जिन्दगी दुःखों का घर है। वास्त व में वह न मजा लेने के लिए है और न दुःखों का घर है। जिन्दगी है जीवनदाता को पहचानने के लिये , जिन्दगी के रहस्य को जानने के लिये। जिन्दगी का रहस्य अछूता रह जाता है और जिन्दगी पूरी हो जाती है। शरीर के खानपान में और व्यवहार में ही आयु बीत जाती है। आखिर में इस शरीर को जला देना है। इसको अच्छा खिलाया-पिलाया, चर्बी अधिक बढ़ाई तो मुट्ठी भर राख अधिक होगी और क्या ? अधिक सुविधा में रहने की जितनी आदत बनेगी, असुविधा उतनी अधिक खटकेगी। अहं का पोषण करने की जितनी आदत बनेगी , अपमान उतना अधिक चुभेगा। सामग्रियों के बीच रहने की जि तनी आदत बनेगी, सामग्रियों की अनुपस्थिति में उतनी अधिक बेचैनी होगी।

आत्मा का सुख ऐसा है कि सारी सामग्रियाँ अपने आप खिंचकर आ जाती है फिर भी उनमें आसक्ति नहीं होती। मौज आयी तो उनका उपयोग कर लिया लेकिन उनमें ममता नहीं होती।

जिनका जीवन पूर्ण है उनके पास सामग्री ज्यादा नहीं होती तब भी वे पूर्ण सुखी होते हैं। पूर्ण जीवन की ओर जिनकी यात्रा नहीं है उनके पास बहुत कुछ होते हुए भी जीवन में बेचैनी , अशांति, अतृप्ति रहती है। धन बढ़ने से अगर सुख होता तो विश्व के जाने माने धनवान् मि. फोर्ड को नींद के लिये इन्जेक्शन नहीं लग वाने पड़ते। सत्ता बढ़ने से अगर सुख होता तो बड़े- बड़े सत्ताधीश रात्रि को बेचैन नहीं होते। सुख तो सच्ची समझ आने से होता है। जीवन की धारा कहाँ से आती है यह ज्ञान हो जाय तो सुखी होना घर की खेती बन जाय।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

एकाग्रताः परम तप

तप कई प्रकार के होते हैं। जैसे शारीरिक तप , वाचिक तप, मानसिक तप इत्यादि। इनमें भी विभिन्न प्रकार होते हैं। ऋषिगण कहते हैं कि सब तपों में एकाग्रता परम तप है। जिसके पास एकाग्रता के तप का खजाना है वह संसार के विषयों को जानना चाहे तो जान सकता है , रिद्धि-सिद्धियों का स्वामी बनना चाहे तो बन सकता है और आत्म- साक्षात्कार करना चाहे तो उसमें भी सफल हो सकता है। वैज्ञानिक आविष्कारों में भी एकाग्रता ही काम करती है।

वैज्ञानिक आविष्कार करने वाले विज्ञानी प्रारम्भ में दृश्य पदार्थ को देखकर सोच विचार करते हैं। इस प्रकार विषय-पदार्थ का अनुसंधान करते-करते जब एकाग्र हो जाते हैं, मन की गहरी सतहों में चले जाते हैं तब कुछ पदार्थगत सत्य उनके हाथ लगता है। विज्ञान में जो भी आविष्कार हुए हैं, वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में जो प्रतिष्ठा पाई है इन सबके पीछे एकाग्रता का ही बल है। चंचल, विक्षिप्त चित्तवाला आदमी आविष्कार नहीं कर सकता।

मृत्युलोक का जीवन हो चाहे स्वर्गलोक का जीवन हो , व्यवहार हो चाहे परमार्थ हो , कर्मकाण्ड हो चाहे तत्त्वज्ञान हो , रिद्धि-सिद्धियाँ हों चाहे आत्म- साक्षात्कार हो, जितने प्रमाण में एकाग्रता होगी उतनी सफलता मिलेगी। इसीलिए ऋषिवचन हैः

तपः सु सर्वेषु एकाग्रता परं तपः।

एकाग्र मन में अदभुत सामर्थ्य होता है। मन अगर चंचल है विक्षिप्त है तो मनुष्य को दुःखों की गर्त में खींच ले जाता है। चंचल मन में आने वाले विचारों के मुताबिक , इच्छाओं के मुताबिक आदमी सब कार्य करता जाय बिना सोचे-समझे, बिना विवेक किये, तो मन पदार्थों की गुलामी में आदमी को दीन-हीन बना देता है।

चंचल मन कमजोर होता है। कमजोर मन अधिक सुरक्षाएँ ढूँढता है। मन जितना कमजोर, सुरक्षा की आवश्यकता उतनी ज्यादा। अपने को बुद्धिमान् मानने वाले बड़े- बड़े लोग मन की चंचलता में आकर कमजोर हो जाते हैं। अपने सुख की सुरक्षा के लिए पूरी अक्ल- होशियारी भौतिक चीजों को इकट्ठी करने में लगा देते हैं। फिर उन चीजों को , धन-सम्पत्ति को अधिक सुरक्षित करने के लिए देश छोड़कर विदेश में ले जाते हैं। वे जब पकड़े जाते हैं तो अति दीनता को प्राप्त होते हैं अथवा तो मृत्यु के समय वही संपत्ति की चिन्ता उनको प्रेत बनाकर भटकाती है।

मन भौतिक चीजों का आश्रय जितना अधिक लेता है उतना भीतर से खोखला हो जाता है। मन भीतर से जितना खोखला होता है उतनी अधिक सुरक्षा चाहता है । जितनी अधिक सुरक्षा चाहता है उतना अधिक झपेटा जाता है। यह सनातन सत्य है।

माउन्ट आबू में हम नलगुफा में रहते थे। उसके पीछे पाण्डव गुफा है। वहाँ के एक पुराने साधू ने मुझे बताया कि झरने के पास रात्रि को शेर आता है। अभी कुछ दिन पहले आया था और एक बन्दर को पकड़कर खा गया।

शेर ने बन्दर को कैसे पकड़ा? बन्दर तो वृक्ष की ऊँची डालियों पर होते हैं। शेर वहाँ पहुँच नहीं सकता। वह बन्दर को कैसे पकड़ता है?

शेर पहले आकर जोर से दहाड़ता है। यह सुनकर बन्दर घबड़ा जाते हैं। उनकी टट्टी- पेशाब छूट जाती है। शेर जब दूसरी बार दहाड़ता है तो बन्दर के लिए पेड़ पर इधर- उधर भाग-दौड़ करते हैं, चिल्लाते हैं, हताश हो जाते हैं , बुद्धि व दृष्टि ठीक से काम नहीं देती। भय के मारे सन्तुलन खो बैठते हैं और वृक्ष से गिर पड़ते हैं, शेर के शिकार बन जाते हैं।

जंगल में दूसरे प्राणी भी छिपकर बैठे होते हैं। शेर की दहाड़ सुनकर जब वे सुरक्षा के लिए भाग-दौड़ करते हैं, कोई दूसरा स्थान खोजने के लिए बाहर निकल कर भागते हैं तो शेर की झपट में आ जाते हैं। बिल्ली भी रात्रि को डरावनी आवाज करती है तो चूहे डर के मारे भाग- दौड़ करते हैं और झपेटे जाते हैं।

मन पदार्थों के साथ , प्रतिष्ठा के साथ , देहाभिमान के साथ जुड़ जाता है तो भीतर से खोखला हो जाता है। खोखला मन बाह्य साधनों में सुरक्षा खोजता है। फलतः व्यक्ति मनोबल खो बैठता है। मन एकाग्र होता है तो वह भीतर से अपने को बलवान महसूस करता है एकाग्रता के तप के आगे बाहर का धन, बाहर की सत्ता, बाहर की सुरक्षा कोई मूल्य नहीं रखती।

एकाग्र मन स्वयं प्रसन्न रहता है, बुद्धि का विकास होता है, जीवन भीतर से परितृप्त और जीने योग्य होता है। व्यक्ति का मन जितना एकाग्र होता है , समाज पर उसकी वाणी का, उसके हाव भाव का , उसके क्रिया-कलापों का उतना ही गहरा प्रभाव पड़ता है। उसका जीवन चमक उठता है।

एकाग्रतारूपी खजाना प्राप्त करने के कई तरीके हैं। उन सबमें त्राटक भी एक तरीका है। त्राटक के कुछ प्रयोग यहाँ जानेंगे। आप हिमालय में जाकर साधना नहीं कर सकते , आश्रम में सदा रहकर भी आप अभ्यास नहीं कर सकते लेकिन ये प्रयोग अपने घर में ही करके लाभ उठा सकते हैं।

अपने ध्यान-भजन-साधना के कमरे में ॐ अथवा स्वस्तिक का एक चित्र बना लो। भूमि पर बिछे हुए आसन पर आप बैठें तो वह चित्र आपकी आँखों के ठीक सामने रहे इस प्रकार तीन-चार फीट दूर रख दो। चित्र आँखों के ठीक सामने हो, न ऊँचा हो न नीचा हो।

त्राटक का अभ्यास करने के लिए हररोज एक निश्चि त समय पर एक ही जगह बैठने से अधिक लाभ होगा। चित्र के सामने आसन पर स्वस्थ होकर सीधे बैठ जाओ। आँखें खुली रखकर

उस चित्र को अपलक नेत्रों से देखते रहो। दृष्टि को एक ही बिन्दु पर एकाग्र कर दो। आँखों की पलकें गिरें नहीं। दृष्टि एकटक रहे, शरीर अडोल रहे।

प्रारम्भ में जरा कठिन लगेगा। थकान लगेगी , उबान आयेगी, आँखों की पलकें गिरने लगेंगी फिर भी दृढ़ होकर अभ्यास जारी रखो। जब तक आँखों से पानी न टपके तब तक उस चित्र को एकटक निहारते रहो ... निहारते रहो... पाँच मिनट... सात मिनट... दस मिनट.... पंद्रह मिनट... अभ्यास बढ़ाते जाओ। जितना आगे बढ़ोगे उतना अधिक लाभ होगा। इस प्रयोग में कोई खतरा नहीं, कोई हानि नहीं।

अपने कमरे में घी का दीया जला दो। मोमबत्ती भी चल सकती है। यदि घी का दीया हो तो अच्छा है। उसको थोड़ी दूर रखकर उसकी लौ को एकटक , अपलक नेत्रों से देखते रहो। शरीर सीधा व अडोल रहे। आँखों की पलकें न गिरें। आँखों से पानी टपके तब तक देखते रहो .... निहारते रहो। आपके मन की एकाग्रता बढ़ती जायेगी।

कभी चाँदनी रात में छत पर चले जाओ या लेट जाओ। उसको एकाग्र दृष्टि से देखो। पलकें न गिरें। चाँद पर त्राटक करते- करत जब आप केन्द्रित हो जाओगे तब चाँद दि खना बन्द हो जायेगा, सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश दिखेगा। अथवा एक चाँद की जगह दो-तीन चाँद दिखेंगे। चाँद के बदले किसी प्रकाशित तारे या नक्षत्र पर भी त्राटक कर सकते हो।

आसन पर बैठकर अपने शरीर के किसी केन्द्र (चक्र) पर धारणा एकाग्र करने से भी बहुत लाभ होता है। हमा रे सूक्ष्म शरीर में सात चक्र होते हैं। वे आध्यात्मिक शक्तियों के केन्द्र हैं। स्थूल शरीर में चर्मचक्षुओं से वे दिखते नहीं फिर भी स्थूल शरीर के ज्ञानतंतुओं- स्नायुकेन्द्रों के साथ उनकी समानता जोड़कर उनका निर्देश किया जाता है। हमारे शरीर में ऐसे मुख्य सात चक्र इस प्रकार हैं- मूलाधारः गुदा के पास मेरूदण्ड के आखिरी मनके के पास होता है। स्वाधिष्ठानः जननेन्द्रिय से ऊपर और नाभि से नीचे के भाग में होता है। मणिपुरः नाभिकेन्द्र में होता है। अनाहतः हृदय में होता है। विशुद्धाख्यः कण्ठ में होता है। आज्ञाचक्रः भृकुटी के बीच होता है। सहस्रारः मस्तिष्क के ऊपर के भाग में जहाँ चोटी रखी जाती है वहाँ होता है।

इन चक्रों में वृत्ति एकाग्र करके ध्यान करने से विभिन्न प्रकार के लाभ होते हैं। जैसे किसी बाह्य पदार्थ पर दृष्टि जमाकर त्राटक किया जाता है वैसे इन चक्रों पर मानसिक दृष्टि से त्राटक किया जाता है।

नीचे के पाँच चक्रों में ध्यान करने से जो लाभ होते हैं वे सब लाभ आज्ञाचक्र में ध्यान करने से अपने आप हो जाते हैं।

एक सफेद गत्ते पर रूपये के सिक्के जितना वर्तुल स्याही से रंग दो। बीच में तिल जितना बिन्दु पीला कर दो। इस बिन्दु पर त्राटक करो। बिन्दु को निहारते-निहारते जब वह पीला बिन्दु

सफेद दिखने लग जाय तब आँखें बन्द करके भृकुटी के बीच में स्थित आज्ञाचक्र में वृत्ति एकाग्र करके उस बिन्दु को देखो। इस प्रकार आज्ञाचक्र में सरलता से ध्यान हो सकेगा।

किसी आत्मज्ञानी ब्रह्मवेत्ता महापुरुष के सान्निध्य में यह यात्रा निर्विघ्न रूप से होती है।

आपकी श्रद्धा जिस इष्टदेव में हो , भगवान में हो, देवी-देवता में हो या सदगुरुदेव में हो , जिसे आप खूब स्नेह करते हो, आदर करते हो, पूजन करते हो उनकी मूर्ति, चित्र या फोटो अपने साधना-कक्ष में उचित जगह पर रखो। उनके सामने आसनस्थ होकर बैठ जाओ। उनके चरणों से लेकर मस्तक तक .... मस्तक से लेकर चरणों तक के अंगों को खूब प्रेमपूर्ण दृष्टि से निहारते रहो। फिर किसी भी एक अंग पर दृष्टि जमाकर त्राटक का अभ्यास करो। पलकें गिराये बिना निहारते रहो। निहारते-निहारते ठीक एकाग्रता हो जाय तो आँखें बन्द करके दृष्टि को भ्रूमध्य में , आज्ञाचक्र में एकाग्र करो। बाहर जिस मूर्ति या फोटो पर त्राटक किया था वह भीतर दिखने लगेगा। वृत्ति को एकाग्र करने में यह प्रयोग बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

व्यवहार के क्षेत्र में या परमार्थ के क्षेत्र में जिनको जल्दी आगे बढ़ना है, सफल होना है उनके लिए एक बढ़िया तरीका यह भी हैः काँसे की थाली में शिवलिंग स्थापित करो। भगवान का पूजन करो। धूप-दीप करो। जल चढ़ाओ। फिर वह सब ऐसे ही रखकर शिवलिंग को स्नेहपूर्ण दृष्टि से निहारते जाओ। आँखों की पलकें गिराये बिना त्राटक करते जाओ। इससे आँ खों की रोशनी भी बढ़ेगी और त्राटक सिद्ध होने पर मनोजय होने लगेगा।

इस प्रकार त्राटक के द्वारा मन को एकाग्र करने के कई तरीके हैं। प्रारम्भ में तो लगेगा कि हम त्राटक करते हैं , ध्यान में बैठते हैं लेकिन मन इधर- उधर चला जाता है। कुछ लाभ दिखाई नहीं देता, कोई अनुभव नहीं होता। फिर भी आप निराश न होओ। उत्साहपूर्वक अभ्यास जारी रखो। मन में अनंत अनंत संकल्प- विकल्प उठते रहते हैं। त्राटक के अभ्यास से इनका प्रमाण कम होता जायेगा। अभी जो संकल्प- विकल्प होते हैं उनका प्रमाण 90....80....70... ऐसे कम होता जायेगा। कम होते होते 2% ही रह जायेगा और एक समय ऐसा भी आयेगा कि जब आप निःसंकल्प अवस्था को प्राप्त कर लोगे। यह निःसंकल्पावस्था ही ईश्वरीय अवस्था है , ब्राह्मी स्थिति है।

ऐसा नहीं है कि आप त्राटक करो , ध्यान-भजन करो और आकाश से कोई देवी- देवता आयेंगे, आपको कोई वरदान देंगे, कुछ देंगे तब आप सुखी होंगे। मानो आपके अभ्यास के बल से वे आ भी जायें, आशीर्वाद या कोई चीज-वस्तु दे भी दें फिर भी वह सदा के लिए रहेगी नहीं। वह वस्तु आपको छोड़कर कभी-न-कभी चली जायेगी अथवा आप उसको छोड़कर चले जाओगे। अतः अभ्यास द्वारा उपार्जित शक्ति का उपयोग देवी-देवता से कुछ माँगने में नहीं करना है अथवा किसी को ठीक करने के लिए पानी अभिमंत्रित करके देने में नहीं करना है। त्राटक का उपयोग मनोजय के लिए ही करना है।

अपने चित्त में संकल्प-विकल्पों की बड़ी भारी भीड़ लगी है। उसको त्राटक के द्वारा हटाओ। एक ऐसी दशा लाओ कि एक संकल्प उठा, विलीन हुआ... फिर दूसरा अभी उठा नहीं ...बीच में जो निःसंकल्पावस्था है उसको बढ़ाओ। दो संकल्पों के मध्य की जो अवस्था है वह शुद्धावस्था ही आपका आत्मस्वरूप है। इस अवस्था में बड़ी ताकत है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। इसी ब्राह्मी अवस्था में परम सुख है, प्रगाढ़ शांति है, अदभुत सामर्थ्य है। एकाग्रता के अभ्यास द्वारा यह अवस्था सिद्ध कर लेना एकाग्रता का सदुपयोग है।

श्रीमद् राजचन्द्र का एक साधक त्राटक का अभ्यास किया करता था। एकाग्रता के अभ्यास से संकल्पबल इतना विकसित कर लिया कि आठ मन की तिजोरी को दृष्टिमात्र से एक कोने से उठाकर दूसरे कोने में रख देता था। राजचन्द्र को पता चला कि उस साधक ने त्राटक के द्वारा कुछ सामर्थ्य जुटा लिया है और भारी तिजोरी को दृष्टि से उठाकर लोगों को दिखा रहा है। उन्होंने उसे बुलाया और डाँट लगाया कि चार मजदूर जो काम कर सकते हैं, बारह साल की साधना से तूने वही काम किया?

एकाग्रता के अभ्यास से ऐसा संकल्पबल विकसित किया जा सकता है कि दो क्षण एकाग्र होकर पानी को निहारो और संकल्प करके वह पानी बड़े-बड़े डॉक्टरों से निराश होकर लौटे हुए असाध्य रोग से पीड़ित किसी मरीज को दे दो तो उसका रोग मिट सकता है। एकाग्रता शक्ति का खजाना है। उसको कहीं भी लगाओ। व्यवहार की सफलता में लगाओ, सेवा में लगाओ चाहे परमार्थ सिद्ध करने में लगाओ।

यदि त्राटक के द्वारा एकाग्रता सिद्ध की लेकिन उसका उपयोग लौकिक चीजों की प्राप्ति में किया तो कोई विशेष लाभ नहीं है। एकाग्रता का उपयोग यदि आत्मदेव को जानने में किया, परमात्मा को पाने में किया, जन्म-मृत्यु की जंजीरों को काटने में किया तो धन्यवाद है।

परमात्मा को नहीं पाना हो तो परमात्मा कोई भाजी, मूली, पालक, तरकारी तो हैं नहीं कि बिगड़ जायेंगे। इस जन्म में उन्हें नहीं पायेंगे तो माया की थप्पड़ें खा-खाकर दस जन्मों के बाद, दस हजार जन्मों के बाद, दस करोड़ जन्मों के बाद भी परमात्मा को तो पाना ही पड़ेगा, आत्मज्ञानी होना ही पड़ेगा। जायेंगी कहाँ? अपने अन्तर्यामी परमात्मा का दीदार तो करना ही पड़ेगा। दुःखों से छूटने का और कोई चारा नहीं। इसी जन्म में आत्म-साक्षात्कार कर लो। सौभाग्य है हमारा, हमारे माता-पिता का, हमारे पूरे परिवार का।

रमण महर्षि साधनाकाल में त्राटक का अभ्यास किया करते थे। आँखों की पलकें गिराये बिना आकाश की ओर या पर्वतमालाओं की ओर देखते रहते थे। त्राटक के बल से मनोजय करते थे। सिद्धावस्था प्राप्त होने पर भी साधनाकाल में किया हुआ अभ्यास काम में लेते। आश्रम में दर्शन-मुलाकात के खण्ड में सोफा पर बैठते तब आगन्तुकों को एकाग्र दृष्टि से देखते। उनके मन के संकल्प-विकल्प शांत कर देते। अपने भीतर लहराते हुए आनंद-सागर की झाँकी उनको भी

करा देते। निःसंकल्प दशा की झलक एक बार भी मिल जाय तो उसके आगे प्रधानमंत्री का पद भी तुच्छ भासने लगे। निःसंकल्पावस्था का इतना भारी सुख है ! संसारी लोगों ने तो सुख देखा ही नहीं।

'बापू ! सुख हमने कभी नहीं देखा?'

नहीं, कभी नहीं।

'शादी के दिन हमको बहुत सुख मिला था।'

नहीं, वह सुख न था। एक बार सच्चा सुख आ जाय तो फिर जाता नहीं। जिसको संसारी लोग सुख मानते हैं वह सचमुच में सुख नहीं। वह तो है हर्ष। हर्ष का दूसरा पहलू है शोक। हर्ष और शोक मन की तरंगे हैं। सच्चा सुख देखा नहीं इसलिए आदमी हर्ष की तरंगों को सुख मान लेता है। एक बार सच्चा सुख मिल जाय दो मिनट के लिए भी , तो फिर दोबारा गर्भवास का दुःख नहीं सहना पड़ता। जन्म-मृत्यु के चक्कर से वह जीव सदा-सदा के लिए मुक्त हो जाता है। वह ऐसा सुख है ! उसको आत्मसुख बोलते हैं। संसारी लोग जिसे सुख बोलते हैं वह विकारों का सुख है, सुखाभास है। अन्नमय-प्राणमय शरीर में जीने वाले लोग बेचारे आत्मसुख को क्या जानें?

सितारों से जहाँ कुछ और भी हैं।
इश्क के इम्तिहाँ कुछ और भी हैं।।

विवेकानन्द कहा करते थे कि हम लोग कूपमंडूक हैं। एक कुएँ में मेंढक रहता था। भाग्यवशात् उसके पास एक दरियाई मेंढक आ गया। कुएँ के मेंढक ने पूछाः "भैया कहाँ से आ रहे हो?"

"विशाल... विशाल... विशाल महासागर से।"

"महासागर कितना बड़ा है?"

"बहुत बड़ा।"

उस कूपमंडूक ने कुएँ में छलाँग मारकर दिखाते हुए कहाः "इतना बड़ा?"

"नहीं, इससे बहुत बड़ा।"

जोर से दूसरी छलाँग मारकर पूछाः "इतना बड़ा?"

"नहीं, और बड़ा।"

खूब साँस फुलाकर अपनी पूरी ताकत लगाकर कूदते हुए वह मेंढक बोलाः "इससे बड़ा तेरा सागर हो ही नहीं सकता।"

इसे कहते हैं कूपमंडूकता। कुएँ में ही कूदाकूद करके उस कूपमंडूक ने सागर का नाप निकाल लिया। ऐसे ही हम भी मन रूपी कुएँ में कल्पना रूपी छलाँगे मारकर सोचते हैं कि ज्ञानी का सुख ऐसा होगा, उनकी मुक्ति ऐसी होगी। हम उस कूपमंडूक के बिलकुल निकट के पड़ोसी हैं। इसीलिये विवेकानन्द कभी-कभी भाव से भर जाते तो बोल उठतेः "हे प्रभु ! मैं क्या करूँ... मुझे कैसा अनुभव हो रहा है.. कोई दूसरा विवेकानन्द पैदा करता तो वह जान सकता।"

साक्षात्कार में कैसी व्यापकता होती है , ब्राह्मी स्थिति का अनुभव क्या होता है यह राज समझ में तो आता है लेकिन समझाया नहीं जाता। वाणी की वहाँ गति नहीं। उस गरिमा में पहुँचने के लिए एकाग्रता बड़ा कदम देगी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

गीता में सगुण-निर्गुण उपासना

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।।

अर्जुन बोलेः 'जो अनन्यप्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकार से निरन्तर आपके भजन- ध्यान में लगे रहकर आप सगुणरूप परमेश्वर को और दूसरे जो केवल अविनाशी सच्चि दानन्दघन निराकार ब्रह्म को ही अतिश्रेष्ठ भाव से भजते हैं - उन दोनों प्रकार के उपासकों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं?'

श्री भगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।

श्री भगवान बोलेः 'मुझमें मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मुझको योगियों में अति उत्तम योगी मान्य हैं।'

अर्जुन प्रश्न करते है कि सगुण साकार का उपासक श्रेष्ठ है कि निर्गुण निराकार का उपासक श्रेष्ठ है? यह केवल अर्जुन का ही प्रश्न नहीं है। आज भी मानव के मन में ये प्रश्न उठते रहते हैं कि साकार भगवान की उपासना ठीक है कि निराकार की उपासना ठीक है ? यह प्रश्न तो ऐसा हैः अमृत के सागर का स्वाद ठीक है कि अमृत के आचमन का स्वाद ठीक है?

स्वाद दोनों का एक है । सुवर्ण के बड़े पर्वत का कस और एक टुकड़े का कस , ये दोनों एक प्रकार के होते हैं। ऐसे ही खण्ड और अखण्ड दोनों के उपासकों को रस आता है। खण्डवाला

प्रारम्भ है और अखण्डवाला अंत है। लेकिन प्रश्न उपासना का हैः निर्गुण निराकार की उपासना श्रेष्ठ है कि सगुण साकार की उपासना श्रेष्ठ है? अक्षर की उपासना श्रेष्ठ है कि क्षर की उपासना श्रेष्ठ है? अक्षर माने जो क्षर न होता हो, परिवर्तित न होता हो, बदलता न हो। उस अक्षर निर्गुण की उपासना श्रेष्ठ है कि रूपलावण्य और माधुर्य से भरे हुए लीला- पुरुषोत्तम, मर्यादा पुरुषोत्तम इष्टदेव के श्रीविग्रह स्वरूप का चिन्तन-भजन श्रेष्ठ है?

सच पूछो तो हर व्यक्ति की अपनी क्षमता, अपनी योग्यता होती है।

आप यहाँ आश्रम में बैठे हैं। आपको यदि नदी के उस पार जाना हो तो नाव ठीक है और शहर में जाना हो तो स्कूटर उत्तम है। नदी पार करने में स्कूटर का काम नहीं और शहर में जाने के लिए नाव उपयोगी नहीं। यहाँ से मेहसाना जाना हो तो बस उत्तम है और दिल्ली जाना हो तो ट्रेन उत्तम है। यहाँ से अमेरिका जाना हो तो हवाई जहाज उत्तम है। आपके पास पर्याप्त धन है तो हवाई जहाज ठीक है। अन्यथा स्टीमर आपके लिए उत्तम है। हर व्यक्ति की अपनी-अपनी योग्यता होती है।

साइकिल कार की गति से नहीं भाग सकती और कार साइकिल की तरह सँकरी गलियों में नहीं चलायी जाती। ऐसे ही जिसके चित्त की जितनी तीव्रता हो, जितनी क्षमता हो, ग्रहणशक्ति हो, तड़प हो उसके लिए उस प्रकार का साधन उत्तम माना गया है।

साधनों के बारे में जिनको वाद-विवाद है वे साधन को प्राधान्य देते हैं और साधनकर्त्ता को गौण मानते हैं। उनके लिए साधक के जीवन की कोई कीमत नहीं। वास्तव में साधनकर्त्ता की योग्यता को ध्यान में रखते हुए साधन का निर्णय होना चाहिए। सब साधन अपनी- अपनी जगह पर उत्तम हैं, श्रेष्ठ हैं। एक माँ के चार बेटे हैं। स्कूल-कालेज में जाने वाले बेटे को मालपुआ दूध में भिगोकर देती है। उस बेटे को मस्तिष्क का काम करना है इसलिए उसको दूध, घी, मक्खन, बादाम आदि जरूरी है। दूसरा बेटा हल चलाने खेत में जाता है। माँ उसके लिए मोटी रोटी बना देती है। साथ में अचार और प्याज रख देती है। गरम गरम लू चल रही है अतः प्याज उसके लिए उत्तम है। तीसरे बच्चे ने जुलाब लिया है। उसके लिए पतनी खिचड़ी तैयार है। चौथा बच्चा सबसे छोटा है। उसका हाजमा बिल्कुल कमजोर है। माँ उसको मालुपुआ नहीं देती, रोटी और प्याज नहीं देती, पतली खिचड़ी भी नहीं देती। उसके लिए बकरी का हल्का दूध ही उत्तम है।

माँ तो एक है। सबको पुष्ट करने की भावना है फिर भी चारों बेटों की अलग- अलग योग्यता के अनुसार अलग-अलग खुराक देती है।

ऐसे ही माँ की भी माँ और बाप के भी बाप जो परमात्मा है वे तो एक और अद्वितिय हैं और हम उनके लिए बच्चों जैसे हैं। हमारे चित्त की अलग- अलग योग्यताओं के अनुसार साधन-सामग्री अलग-अलग है। हम सबको आत्मानंद की तृप्ति तो चाहिए ही। जैसे उन बेटों को अपने

प्राणों की भूख मिटानी है वैसे हम लोगों को , सुख के लिए तड़पते हुए जीवों को परम सुख प्राप्त करके मन की भूख मिटानी है।

लक्ष्य एक है लेकिन साधन अनेक हैं। साधन को यदि साधन समझकर प्रारम्भ किया जाये तो कोई आपत्ति नहं है। साधन को यदि साध्य समझकर बैठे रहे तो गड़बड़ी हो जाती है।

महात्मा दो प्रकार के उपदेश दिया करते हैं। कोई उनके पास जाय और कहे किः "बाबाजी ! हम किसकी उपासना करें ?" तो महापुरुष पूछेंगेः "तुम कौन-से देव से प्रीति करते हो ? तुम्हें कौन अपना इष्ट लगता है?"

जैन होगा तो बोलेगाः "मैं महावीर को मानता हूँ।"

तो वे कहेंगेः "हाँ, महावीर भगवान हैं। उन जैसा भगवान दुनिया में हुआ ही नहीं । तुम महावीर की उपासना करो , महावीर का ध्यान करो। महावीर मौन रहते थे , तुम भी थोड़ा मौन रहा करो। वे सुख-दुःख में सम रहते थे, तुम भी सम रहा करो।"

भगवान श्रीकृष्ण का कोई भक्त पूछेगा तो कहेंगेः "अरे ! श्रीकृष्ण का स्मरण करते ही चित्त आकर्षित हो जाता है। श्रीकृ ष्ण विषम परिस्थितियों में भी सदा सम रहे। श्रीकृष्ण देव भी है, भगवान भी हैं, गुरु भी हैं। 'कृष्णं वन्दे जगदगुरुम्।' श्रीकृष्ण साकार भी हैं और निराकार भी हैं। आनंदस्वरूप भी हैं और प्रेमस्वरूप भी हैं। वक्ता भी हैं , श्रोता भी हैं। शिष्य की जगह पर पूर्ण शिष्य हैं, गुरु की जगह पर पूर्ण गुरु होते हैं। गुरु भी ऐसे कि उनकी बराबरी कोई न कर सके। विनोद में ऐसे कि पूरे नटखट नागर। गप्पीदास ऐसे कि उनके बराबर की कोई गप्प नहीं लगा सकता और समता भी ऐसी कि उनकी तुलना किसी के साथ नहीं हो सकती। श्रीकृष्ण तो श्रीकृष्ण हैं। मैं भी श्रीकृष्ण की पूजा करता हूँ। वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं। आप भी पूरी निष्ठा से उनकी उपासना में लगे रहो।"

आयेगा कोई शिवजी का भक्त तो बोलेंगेः "ओहो....! शिवजी ! अन्य तो सब देव हैं लेकिन शिवजी महादेव हैं। वे देवों के भी देव हैं।"

जगे हुए आत्मनिष्ठ महापुरुष जिस इष्ट में आपकी श्रद्धा होगी उस इष्ट के प्रति आपकी भावना विशेष रूप से जाग्रत करते हैं।

लोग बोलते हैं अन्धश्रद्धा .... अन्धश्रद्धा... किसी चीज को देखकर मान लो , उसका गुण जानकर, उसका स्वाद चखकर बाद में उसका चिन्तन करो इसमें कोई बड़ी बात नहीं है। लेकिन जिसको हम मिले नहीं, जिसको देखा नहीं, जिसके गुण जाने उसको यदि प्यार करते हो, उसका स्मरण करते हो, चिन्तन करते हो तो यह अधिक योग्यता का चिन्ह है। बिना श्रद्धा के , बिना भाव के यह योग्यता नहीं आती।

भगवान यहाँ कहते हैं कि जो परम श्रद्धालु , नित्य युक्त रहकर मुझमें अपना मन लगाते हैं, मेरी उपासना करते हैं वे मेरी दृष्टि से उत्तम योगवेत्ता हैं।

पूजा-उपासना का लक्ष्य यदि परमात्म- प्राप्ति नहीं है और पुजारी होकर 300 रूपये की नौकरी करते रहे, मूर्ति की सेवा-पूजा करते रहे तो भी जीवन में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। मूर्ति की सेवा-पूजा-उपासना में यदि प्रेम है, भावना है, लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति का है तो वह उपासना खण्ड की होते हुए भी हृदय में अखण्ड चैतन्य की धारा का स्वाद दे देगी। मूर्ति में भी अखण्ड चैतन्य की चमक देखते हैं तो जीवन उपासनामय बन जाता है।

श्रद्धा माने अन्धविश्वास नहीं अपितु विश्वास की पराकाष्ठा। बिना देखे उस वस्तु का चिन्तन हो और अन्य चिन्तन खो जाय उसका नाम है श्रद्धा। ईश्वर का चिन्तन करते- करते जगत का चिन्तन खो जाय।

आपकी उपासना चाहे राम की हो चाहे रहीम की , कृष्ण की हो चाहे क्राइस्ट की , महावीर की हो चाहे बुद्ध की , देवी की हो चाहे देवता की लेकिन उपासना का फल है राग- द्वेष का कम होना। जगत की इच्छाएँ , वासनाएँ कम होती जायें , राग-द्वेष कम होते जायें , बिना इच्छा वासनाओं के निरामय स्वाद के द्वार खुलते जायें यही सारी साधनाओं और उपासनाओं का फल है।

सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।

राग-द्वेष जब कम होता है तब अन्दर ही ज्ञान का दरिया , सुख का सागर छलकने लगता है। मनुष्य परम स्वातन्त्र्य का अनुभव करता है।

कुछ महात्मा ऐसे होते हैं कि जो जो भक्त की रूचि देखकर , उसकी इष्टदेव की पसन्द देखकर उसी साकार स्वरूप के प्रति विशेष श्रद्धा जगाते हैं और साकार की सेवा , पूजा, चिन्तन, मनन, स्नान, पंचामृत, उसके उत्सव की महिमा आदि बताते हैं। शिवजी के भक्त को शिवरात्री , रामजी के भक्त को रामनवमी , श्रीकृष्ण के भक्त को जन्माष्टमी , महावीर के भक्त को महावीर जयंती, झूलेलाल के भक्त को चेटी चण्ड आदि पर्वों में प्रवृत्त करते हैं। इस प्रकार उनका चित्त अनेक से हटाकर एक में केन्द्रित कर देते हैं।

कुछ महात्माओं से पूछो किः "महाराज ! ईश्वर क्या हैं? कहाँ हैं? कैसे हैं? क्या करते हैं?" ....तो वे बोलेंगेः "मैं ही परमात्मा हूँ। तेरे सामने उपस्थित हूँ। मेरी पूजा कर। मुझे ही देख। मुझे ही समझ। तेरे सामने उपस्थित हूँ। मेरी ही पूजा कर। मुझे ही देख। मुझे ही समझ। मैं जो करता हूँ वह उचित है और जो नहीं करता हूँ वह गलत है।"

भगवान श्रीकृष्ण इस प्रकार के महात्मा हैं। अर्जुन को वे कहते हैं- "तू मेरा ही पूजन कर, मेरा ही यजन कर, मेरा ही भजन कर। तू मेरे परायण हो जा।"

रमण महर्षि के इर्द-गिर्द दो प्रकार के भक्त थे। जिनका मन साकार में विशेष लगता था वे रमण महर्षि को भगवान मानकर उपासना करते थे। जिनकी बुद्धि तत्त्व को समझने में विशेष रूचि रखती थी वे रमण महर्षि से तात्त्विक स्वरूप का उपदेश सुनकर उनको व्यापक अखण्ड चैतन्य मानते थे।

उड़िया बाबा के पास एक आदमी आया। बोलाः "महाराज ! भगवान साकार हैं कि निराकार हैं? ब्रह्मवेत्ता साकार हैं कि निराकार हैं ? बाबाजी ! यह जो शरीर दिखता है वह आप हैं कि शरीर में छिपा हुआ जो आत्मा है वह आप हैं।"

बाबाजी ने कहाः "पागल ! मैं दोनों हूँ। मैं शरीर को छोड़कर ब्रह्म नहीं हूँ , शरीर सहित ब्रह्म हूँ। यह शरीर भी ब्रह्म है।"

शरीर को बाधित करने की प्रकिया तो जिज्ञासुओं को दी जाती है। नाम और रूप को बाधित कराके उन्हें तत्त्व का उपदेश दिया जाता है ताकि वे कहीं संसार में न फँस न जायें। जिज्ञासु जब ऊँचा उठता है और आखिरी घड़ियों में आता है तब उसको कहा जाता है किः **सर्वं खल्विदं ब्रह्म।** जब सब कुछ ब्रह्म है तो यह शरीर अब्रह्म कैसे हुआ?

कई लोग कहते हैं कि 'गुरु तो तत्त्व हैं, गुरु तो चिन्मयवपु हैं।' गुरु तत्त्व हैं तो गुरु का शरीर क्या भूत है?

चिदानन्दमय देह तुम्हारी विगत विकार कोई जाने अधिकारी।

जब सब ब्रह्म है, व्यक्त और अव्यक्त ब्रह्म है, तो उड़िया बाबा की देह अब्रह्म है क्या?

गुरु को केवल तत्त्व मानकर घर में ही प्रणाम कर लेते हैं, गुरु के पास जाना टालते हैं वे लोग अपने आपसे धोखा करते हैं। उनका अहं बचने की कोशिश करता है। गुरु के सामने झुकने में डर लगता है।

'ऐसी कौन सी जगह है जहाँ गुरु नहीं है ?' - ऐसा कहकर लोग घर में ही बैठे रहते हैं। वासनाओं को पोषने का यह एक ढंग है। पत्नी के बिस्तर पर जायेंगे लेकिन गुरु के आश्रम में नहीं जायेंगे।

गुरु को केवल तत्त्व मानकर उनकी देह का अनादर करेंगे तो हम निगुरे रह जायेंगे। जिस देह में वह तत्त्व प्रकट होता है वह देह भी चिन्मय आनंदस्वरूप हो जाती है।

समर्थ रामदास का आनंद नामक एक शिष्य था। वे उसको बहुत प्यार करते थे। अन्य शिष्यों को यह देखकर ईर्ष्या होने लगी। वे सोचतेः 'हम भी शिष्य हैं। हम भी गुरुदेव की सेवा करते हैं फिर भी गुरुदेव हमसे ज्यादा प्यार आनन्द को देते हैं।'

एक बार समर्थ रामदास ने एक युक्ति की। अपने पैर में एक कच्चा आम बाँधकर ऊपर कपड़े की पट्टी लगा दी। फिर पीड़ा से चिल्लाने लगेः "पैर में फोड़ा निकला है.... बहुत पीड़ा करता है... आह...! ऊह...!"

कुछ दिनों में आम पक गया और उसका पीला रस बहने लगा। गुरुजी पीड़ा से ज्यादा कराहने लगे। सब शिष्यों को बुलाकर कहाः

"अब फोड़ा पक गया है, फट गया है। उसमें से मवाद निकल रहा है। मैं पीड़ा से मरा जा रहा हूँ। कोई मेरी सेवा करो। यह फोड़ा अपने मुँह से कोई चूस ले तो मिट सकता है।"

सब शिष्य एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। बहाने बना- बनाकर एक-एक करके सब खिसकने लगे। शिष्य आनंद को पता चला। वह तुरन्त आया और गुरुदेव के पैर को अपना मुँह लगाकर फोड़े का मवाद चूसने लगा। गुरुदेव का हृदय भर आया। बोलेः "बस.... आनंद! बस। मेरी पीड़ा चली गई।" मगर आनन्द ने कहाः

"गुरुजी ! अब क्या छोड़ूँ? ऐसा माल मिल रहा है फिर छोड़ूँ कैसे?"

ईर्ष्या करने वाले शिष्यों के चेहरे फीके पड़ गये।

बाहर से फोड़ा दिखते हुए भी भीतर से आम का रस है। ऐसे ही बाहर से फोड़े जैसे दिखनेवाले गुरुदेव के शरीर से आत्मा का रस टपकता है। महावीर के समक्ष बैठने वालों को पता है कि क्या टपकता है महावीर के सान्निध्य में बैठने से। संत कबीर के इर्द- गिर्द बैठनेवालों को पता है, श्रीकृष्ण के साथ खेलनेवाले ग्वालों और गोपियों को पता है कि उनके सान्निध्य में क्या बरसता है।

अभी तो विज्ञान साबित करता है कि हर व्यक्ति के 'वायब्रेशन' (स्पंदन) उसके इर्द-गिर्द फैलते हैं। क्रोधी और लोभी हैं तो वैसे 'वायब्रेशन' (स्पंदन) फैलते हैं।

आसुमल पहले जब घर में थे तब व्यक्तियों के स्पंदनों का खूब अभ्यास किया। अकेले साधना करते तब साधना ही अच्छी लगती। जाकर दुकान पर बैठते तो भाई साहब की बात ठीक लगती। वे कहतेः 'फलाना आदमी बड़ा सेठ हो गया , धनी हो गया। भाई ! तू सुधर। सुबह चार बजे उठता है फिर भी बारह बजे दुकान पर नहीं पहुँचता है ? तू मेरा साथ दे तो हम उन लोगों से आगे निकल सकते हैं।'

दुकान पर बैठता तो भाई की बात ठीक लगती। कहीं किसी आश्रम में जाता , सत्संग सुनता तो सत्संग की बातें अच्छी लगतीं। जैसों के संपर्क में आता था वैसा ठीक लगता था। पानी का रंग कैसा? जिसमें मिलाओ तैसा। जैसा संग करते हो वैसा रंग लग जाता है। आप मांसाहारी, दुराचारी का संग करो, कुछ दिन उनकी बातचीत में रूचि रखो तो आपको लगेगा कि मांस खाने में कोई आपत्ति नहीं है। भगवान ने खाने के लिए ही मांस बनाया है।

आप जैसा संग करेंगे वैसी आपकी रूचि बन जायेगी और उस रूचि को तृप्त करने के लिए बुद्धि तर्क दे देगी। नेताओं का संग करोगे तो जगत को सुधारने के विचार आ जायेंगे। जगत तो सुधरे या न सुधरे लेकिन अहंकार की सजावट तो हो ही जायेगी। आप साधकों का संग करोगे तो आपमें साधक की नम्रता आ जायेगी। भक्तों का संग होगा तो आप वृन्दावन में जाओगे और कुछ ही दिनों में 'राधे.... राधे...' करने लग जाओगे। गंगा किनारे जाओगे तो 'गंगे हर ....' बोलने लगोगे और नर्मदा किनारे जाकर 'नर्मदे हर....' पुकारकर जल में गोता मारोगे।

सिनेमा देखने वाले युवक घर में भी ऐसी अदायें करने लगते हैं। सिनेमा का पोस्टर देखकर उस प्रकार के विचार आने लगते हैं। पर्दे पर दिखनेवाली अदायें वास्तविक नहीं हैं। निर्जीव फिल्म की पट्टियों और प्रकाश की यह करामात है। ऐसे निर्जीव चित्रों को देखकर भी लोग उस प्रकार के जीवन में ढल जाते हैं। कोई जिन्दे सदगुरु अगर मिल जायें और उनके हाव-भाव, निःसंगता, निर्लेपता, सरलता, स्वाभाविकता, निर्दोषता, प्रसन्नता, निजानन्द की मस्ती आदि आदि हम देखें , उनकी अमृतवाणी सुनें और उस प्रकार हमारा जीवन भी ढलने लगे तो परम सौभाग्य है। ज्ञानी महापुरुष के संग में आकर हमें भी लगता है कि जीवन में ज्ञान तो पाना चाहिए, आत्म-साक्षात्कार तो करना चाहिए। जैसा संग वैसा रंग।

आप जिसका संग करते हो उसकी आकृति नहीं लेते हो लेकिन उसके 'वायब्रेशन' (स्पंदन) एवं उसके गुण जरूर लेते हो।

परब्रह्म परमात्मा का चिन्तन करने से हम भी परब्रह्म परमात्मामय हो जाते हैं। आप चिन्तन किसका करते हैं ? मूर्ति में पाषाणबुद्धि करते हैं कि ईश्वरबुद्धि करते हैं ? यदि ईश्वरबुद्धि करते हैं तो आपकी उपासना ठीक है। महावीर की प्रतिमा को आप संगमरमर की मूर्ति समझते हो कि भगवान महावीर समझते हो? जैसी भावना वैसी सिद्धि।

आपका आत्म-चिन्तन जैसे-जैसे आगे बढ़ेगा वैसे-वैसे अन्य चिन्तन छूटते जायेंगे। इतर चिन्तन ही दुःखदायी है। ब्रह्म- साक्षात्कार के बाद भी यदि अखण्ड के चिन्तन में नहीं रहे , ब्रह्मानन्द में नहीं रहे तो मन कुछ और चिन्तन में लग जाता है, मनोराज चालू हो जाता है।

चिन्तन राग से होता है और द्वेष से भी होता है। जिस चीज से आपको सुख मिला है उसका स्मरण आता है तभी भी चिन्तन होता है और जिस चीज से आपको दुःख आपको मिला है, मिलता है या मिलेगा उसका भी चिन्तन होता है। राग और द्वेष दोनों आपको अपने आपसे बाहर ले जाते हैं। अपने घर से आपको बाहर भटकाते हैं। बाहर कितना भी घू मने जाओ, फिल्म देखने जाओ, आइसक्रीम खाने को जाओ , 'मेरी-गो-राउण्ड' में घूमने को जाओ , कहीं भी जाओ लेकिन महाराज ! जब ऊबते हो, थकते हो तो कहते हो कि अब घर जाना है।

ईंट-चूने-पत्थर के घर में इसलिए जाते हो कि वहाँ 'अपने घर' में, आत्मा में वापस आने का मौका मिलता है। बाहर के सुखों में कितने भी भटको, राग में कितने भी भागो लेकिन भाग-भागकर आखिर अपने घर में लौटना पड़ता है।

सागर के बीच में एक जहाज जा रहा है। उसके स्तंभ पर एक बाज पक्षी बैठा है। वह पक्षी इधर-उधर उड़ान लेता है लेकिन चारों ओर अपार जल ही जल दिखाई देता है। भूमि का नामोनिशान नहीं है आखिर उसी जहाज पर वापस लौटना पड़ता है।

धागे से बँधा हुआ एक पक्षी आपके हाथ पर बैठा है। वह इधर-उधर भागता है लेकिन वह कहीं ठहर नहीं सकता। उसे हाथ पर ही वापस आना पड़ता है।

इसी प्रकार हमारा चित्त परमात्मा से बँधा है , उसी परमात्मा की सत्ता से दौड़ता है। चित्त कितना भी दौड़े लेकिन कहीं विश्रांति की जगह नहीं। पू रा दिन दौड़-दौड़कर रात को झख मारके हृदयस्थ परमात्मा में आना पड़ता है। मगर नींद में पर्दे के होते हुए , अज्ञान के होते हुए परमात्मा से मिलता है इसलिए उसमें टिकता नहीं और फिर भागता है सुख पाने के लिए।

उपासना इस पर्दे को धुँधला कर देती है और ज्ञान उस पर्दे को हटा देता है।

ईश्वर हमें बुलाना चाहते हैं। वे समझते हैं कि वह जीव दुःखी है। प्रश्न होगा कि यदि ऐसा है तो वे हमें एकदम सुखी क्यों नहीं कर देते? वे हमें क्यों नहीं मिल जाते?

एक कहानी सुन लेना। कहानी है , कल्पित भी हो सकती है लेकिन सत्य समझाने के इशारे हैं इसमें।

एक बार लक्ष्मीजी पृथ्वी पर आयीं। लोग बैठे थे। आलसी थे। कह दिया, "माँ की जय हो।" लक्ष्मी जी ने उन सबके घर सुवर्ण से भर दिया। यह देखकर पृथ्वी रोती रोती लक्ष्मीजी के पास आयी और बोलीः "आप मेरे बच्चों के साथ अन्याय कर रही हो।"

"पगली कहीं की ! मुझे तू रोकने-टोकने आयी है? मैं तेरे बच्चों से अन्याय कर रही हूँ? वे 'माँ... माँ....' करते हैं और मैं एकदम उनका घर सोने से भर देती हूँ ? उन्हें धन से सम्पन्न कर देती हूँ।"

"भगवती ! वे थोड़ा-सा माँगे और आप धन के ढेर लगा दोगी तो उनमें छुपी हुई जो पुरुषार्थ की शक्ति है वह विकसित नहीं होगी। वे पराधीन हो जायेंगे , भिखमंगे हो जायेंगे, स्वामी नहीं बन पायेंगे। पुरुषार्थ करने की योग्यता नष्ट हो जायेगी। मैया ! आप तो नारायण के चरणों में शोभा देती हैं जो आत्मारामी हैं। ये लोग तो विषयारामी हैं। वे जो माँगें वह उन्हें देती जाओगी तो मेरे उन बच्चों का सत्यानाश हो जायेगा।"

लक्ष्मीजी ने सुनी अनसुनी कर दिया। कुछ ही दिनों में घर घर में सोने की थालियाँ, सोने के कटोरे, सोने के घड़े आदि सब सोना सोना हो गया। लोगों ने सोचा कि हमारे घर में इतना

सोना है, अब खेत में जाने की जरूरत क्या है? हल जोतने की जरूरत क्या है? इतना सारा सोना है तो अब मजदूरी कौन करे?

बारिश आयी लोगों ने हल न जोते। दाने न बोये। घर में जो अनाज पड़ा था वह खाते रहे, आलसी होकर बैठे रहे। खेत सब जंगल हो गये। धान्य आदि कुछ पका नहीं। बारिश गयी तो हाय हाय ! लोग आक्रन्द करने लगे। अनाज के बिना छाती पर सोना रखते-रखते मर गये।

पृथ्वी रोती-रोती ब्रह्माजी के पास पहुँची और कहाः "ब्रह्मन ! लक्ष्मीजी को पृथ्वी पर आने का Stay Order (स्थगन आदेश) कर दीजिये, अन्यथा मेरा सब चौपट हो जायेगा।"

ब्रह्माजी ने समाधि लगाकर सब हाल देखा। हाँ, उचित है। मूर्खों को बिना परिश्रम कुछ मिलना नहीं चाहिए। हर चीज का दाम चुकाने से उसकी कद्र होती है, उसका स्वाद भी आता है। बिना दाम चुकाये कोई चीज मिल जाती है तो हममें छिपी हुई शक्ति विकसित नहीं हो पाती और हम पराश्रित हो जाते हैं।

बिना मेहनत के भो जन करते हो तो वह भी ठीक से नहीं पचता। सुपाच्य भोजन भी बिना चबाये खा लिया तो वह कुपाच्य हो जाता है। फिर लम्बी- लम्बी डकारें आती हैं तो बोलते हो, 'मुझे किसी ने कुछ कर दिया है।' अरे भैया ! आपको किसी ने कुछ नहीं किया है। आपने ही अपने आपसे सब कुछ किया है। बिना च बाये भोजन खाया पेटभर और फिर तुरन्त सो गये तो और क्या होगा? भोजन के बाद थोड़ा टहलना चाहिए।

परिश्रम इस सृष्टि का नियम है। प्रकृति का यह नियम है कि जो चल से पैदा हुआ है उसको ठीक रखने के लिए भी चल रखना पड़ता है।

प्रकृति का स्वभाव है चल। मन का स्वभाव है किसी न किसी का चिन्तन करना . जिस किसी का चिन्तन करते हो तो भगवान बोलते हैं मेरा ही चिन्तन कीजिए न ! जब किसी-न-किसी की उपासना करते हैं - पैसों की, पत्नी की, पुत्र की, मकान की, दुकान की - तो भगवान कहते हैं मेरी ही उपासना कीजिये न !

शरीर का जन्म ही कर्म से हुआ है। ज्ञानी हो चाहे अज्ञानी, यह शरीर एक क्षण भी क्रिया के बिना नहीं रह सकता।

कहते हैं कि बड़े- बड़े संत कुछ भी नहीं करते हैं। ऐसे ही चुप बैठे रहते हैं समाधि में। ...तो वे समाधि भी तो करते ही हैं। कुछ भी नहीं करेंगे तो मन मनोराज में चला जायेगा।

मनोराज हटाने के लिए प्रणव (ॐ) का जप करते हैं। बाद में जप छोड़ने का भी जप करते हैं, जप छूट जाता है, कुछ न करने का क्षण आता है तब खबरदारी रखते हैं कि मनोराज तो नहीं हो रहा है ? तन्द्रा तो नहीं आ रही है ? नींद तो नहीं आ रही है ? रसास्वाद तो नहीं आ रहा है?

संक्षेप में, आपको कुछ-न-कुछ करना ही होगा। पुरुषार्थ करना होगा। आलस्य का नाम वेदान्त नहीं है। कर्म करो और उसमें सुख- बुद्धि न रखो। कुछ पाने की इच्छा से या शत्रु को दुःख पहुँचाने की इच्छा से कर्म न करो। कर्म करना आपका स्वभाव है।

हमारा मन चिन्तन किये बिना नहीं रह सकता। चिन्तन या तो रा ग से होगा या द्वेष से, प्रेम से होगा या भय से, स्नेह से होगा या घृणा से। किसी से प्रीति भी न हो और घृणा भी न हो फिर भी अंतःकरण का ऐसा स्वभाव है कि चिन्तन होता ही है। यह चिन्तन हमें अपने आपसे बाहर ले जाता है। अपने आपसे हम जितना बाहर आते हैं उतना तुच्छ हो जा ते हैं। अपनी ओर हम जितना अधिक आते हैं उतने हम महान् हो जाते हैं।

एकान्त में अकेले बैठे हो। किसी से राग नहीं , किसी से द्वेष नहीं। फिर भी देखो तो एक के बाद दूसरा विचार आता ही जायेगा। किसी से कुछ लेना न देना फिर भी फिल्म की पट्टी की तरह चिन्तन की धारा चालू ही रहती है। राग- द्वेष के बिना भी चिन्तन चालू रहता है। यह मनोराज है।

मनोराज और समाधि में क्या फर्क है ? मनोराज से उठने पर शरीर में थकान महसूस होगी, आप सो जाने की इच्छा करेंगे। जैसे आप कोई परिश्रम करके आये हो और आराम की जरूरत हो। ध्यान के बाद आपको ऐसी थकान महसूस होती है , आपको आराम की जरूरत पड़ती हो तो समझ लो कि ध्यान के बजाय आपका मनोराज चला है। ये बहुत बारीक बातें हैं। ध्यान से समझना इन्हें।

मनोराज में शक्ति खर्च होती है। शरीर में थकान पैदा होती है। ध्यान लगता है तो आपमें स्फूर्ति आती है, प्रसन्नता आती है और शरीर में हलकापन महसूस होता है। ध्यान से उठकर आप जम्हाई लेते हो तो क्या ध्यान से उठे हो? ना बेटे ! ध्यान से नहीं उठे, तन्द्रा से उठे हो, लय से उठे हो, मनोराज से उठे हो।

भीतर का रस इतना कमजोर है कि एक मक्खी का डंक नहीं सहा जा ता। आप इतने छिछले पानी में हैं कि एक जरा सी मक्खी आपको बाहर कर देती है।

कथा आती है कि महावीर के कानों में खूँटियाँ डाली गईं , रक्त बहा फिर भी महावीर की आँखें न खुलीं। उनका घर का नाम तो वर्धमान था। वे बन्दूक लेकर रण के मैदान में नहीं गये थे, तीर कमान लेकर युद्ध नहीं किया था अथवा हनुमानजी की तरह पहाड़ नहीं उठाया था फिर भी इस देश के लोगों ने उनको 'महावीर' कहा। कोई छोटा मोटा विघ्न नहीं, कान में कीलें ठोकने जैसा विघ्न आया फिर भी अपने अचल स्वरूप में, अपनी गहराई में अडिग रहे, विजेता हुए.

कथा कहती है कि महावीर के पा स देवता लोग आये। कहा किः "आपको नादान लोग इतना दुःख देते हैं , कानों में कीलें ठोककर चले जाते हैं। खैर , आप तो न बोले लेकिन लोग

बोलेंगे कि आप जैसे परम सज्जन इस पृथ्वी पर आये और सूक्ष्म जगत में रहने वाले देवता लोगों ने उनकी रक्षा नहीं की। .....तो हमें सेवा करने का मौका दो।"

महावीर ने कहाः "क्षमा करो। वे लोग कीलें ठोक कर द्वेष उत्पन्न करना चाहते थे और आप लोग सेवा करके राग उत्पन्न करना चाहते हो। क्षमा करो। सहारा तो कई जन्मों में लिया है। अब मुझे निःसहाय रहने दो। तुम्हारा सहारा हमें पंगु बना देगा।"

जो लोग भगवान का भजन करना चाहते हैं और Safe Deposit Vault की तैयारी करते हैं वे पराधीन और पराश्रित मन के लोग भजन में सफल नहीं होते। कुछ लोग सोचते हैं कि शादी-वादी करके, सन्तानोत्पत्ति करके बेटों को सब कुछ देकर फिर आराम से भजन करेंगे। बुढ़ापे में भजन तो करेंगे लेकिन कैसा भजन करेंगे? आसन पर बैठेंगे तो घुटना दर्द करेगा। घुटना बदलते रहेंगे, जम्हाई खाते रहेंगे या तो ध्यान के समय कौन क्या कर रहा है इसकी फिक्र में मारे जायेंगे।

आप ऐसी फिक्र में भी नहीं पड़ना कि हम महावीर जैसे नहीं हो पाते तो क्या करें? भजन में मन नहीं लगता तो चलो घूमें फिरें। नहीं...। मन लगे चाहे न लगे, तुम उपासना में लगे रहो। Try and try again, you will succeed.

उपासना में मन नहीं लगता है , ध्यान में मन नहीं लगता है , नींद आती है , मनोराज होता है। ईश्वरीय आनंद की अपेक्षा , साधना के आनंद की अपेक्षा यह बेकार है लेकिन संसार में जो राग-द्वेष बढ़ेगा, कर्म बढ़ेंगे इसके बदले इतनी देर शांति से बैठे थे यह अच्छा है। दौ सौ मील नहीं चल सकते हैं तो दो फर्लांग ही सही , लेकिन चलें जरूर। मानों नहीं भी चले फिर भी Reverse (उल्टे) जाने से तो बचे , गिरने से तो बचे। इसलिए मन लगे चाहे न लगे , फिर भी उपासना करते रहो।

'बापू ! उपासना किसकी करें? ध्यान किसका करें?'

किसी का भी ध्यान करो। भैंस का ही ध्यान करो। 'पंचदशी' में एक कथा आती है। एक शिष्य ने संन्यास की दीक्षा ली। गुरु ने कहाः

"तू ध्यान कर। तुमने परब्रह्म परमात्मा के विषय में सुना है लेकिन ध्यान करके जब तक वृत्ति सूक्ष्म न करोगे तब तक वृत्ति ब्रह्माकार न हो पायेगी। अतः तू अपने चित्त को एकाग्र कर।"

शिष्य चला गया गुफा में। कुछ दिनों के बाद गुरु घूमते- घामते वहाँ आये। पूछाः "बेटा ! क्या हाल है?"

"गुरुजी ! क्या बताऊँ? आपकी आज्ञा है इसलिए ध्यान में तो बैठता हूँ लेकिन आपकी आज्ञा का पालन नहीं हो रहा है। मैं जब ध्यान में बैठता हूँ तब मेरे घर में जो भूरी भैंस थी वह

याद आती है। वह बहुत दूध देती थी। मुझे देखकर आवाज करती थी। मुझे वह बहुत प्रिय थी। जब चुप होकर बैठता हूँ तब चित्त में वही गहरा चिन्तन उभर आता है।

आप अपने जीवन में जरा निहारना। जब आप दुकान पर या घर पर हैं तो मंदिर या आश्रम याद आता है। व्यवहार से ऊबते हो तो मौन होने की , ध्यान करने की इच्छा होती है , ध्यान करने बैठते हो तो व्यवहार याद आता है। कभी- कभी ध्यान के समय ऐसा कूड़ा- करकट याद आयेगा कि आपको होगाः यह क्या? इससे तो धन्धा रोजगार अच्छा, घर का काम अच्छा।

आप जब अकेले बैठते हैं तो भूतकाल के विचार भी आते हैं , वर्त्तमान काल के विचार भी आते हैं और अभी कल्पना नहीं की हो ऐसे विचित्र विचार भी आते हैं। आदमी घबरा जाता है कि ऐसे गन्दे विचार आते हैं? ध्यान नहीं लगता है।

अठारह साल से साधन- भजन करने वाले लोग मुझे मिलते आये हैं। उन सबको यही फरियाद रही है कि ध्यान में मन नहीं लगता। चित्त एकाग्र नहीं होता। अच्छे से अच्छा साधक , अच्छे से अच्छा वक्ता, अच्छे से अच्छा भक्त, अच्छे से अच्छा साधू भी यही कहता है कि भगवान में मन नहीं लगता। समझते हैं कि संसार असार है। मृत्यु के एक झटके से संसार से छूट जायेगा फिर भी संसार से वृत्ति उपराम नहीं होती।

परसों एक सम्राट आश्रम में आया था। भूतपूर्व सम्राट था। उसकी पीठ पर घाव पड़े गये थे। हमारा हृदय द्र वित हुआ तो हमने दवाई मँगवाकर मलहमपट्टी कर दी। यथायोग्य सेवा कर दी। उस सम्राट को बहुत साधकों ने देखा भी।

'बापू ! सम्राट और पीठ में घाव पड़ गये थे?'

हाँ.... वह सम्राट भी जैसा तैसा नहीं था। सुवर्ण के बर्तनों में भोजन करने वाला था। उसको चँवर डुलाने वाली दासियाँ भी चमकते हुए हीरजड़ित अच्छे- अच्छे गहने पहनतीं थीं। वह सम्राट तख्त से उठकर जाता तो मार्ग में गिलम बिछ जाते। शयन करता तो फूलों की शय्या सज जाती। ऐसा वह सम्राट था। लेकिन ..... अभी ऊँट होकर आया था। सम्राट से धीवर बना। धीवर से ऊँट बना।

हमारा उससे कुछ लेना-देना था। हमने उसकी मलहम-पट्टी कर दी। उसने धीरे लात मारी और चल दिया। मैंने कहाः 'अच्छा हुआ। लेना-देना निपट गया। बात पूरी हो गयी।'

वह सम्राट जैसा तैसा नहीं था। भविष्य की चिन्ता मिटाने के लिए उसके पास कितना धन था! कितने हीरे जवाहरात थे ! लम्बा-चौड़ा राज्य था। रा ज्य कोई छीन ले तो गाड़े हुए खजाने लेकर भाग सके इतनी सारी तैयारियाँ थी लेकिन सारी तैयारियाँ बेचारे को काम नहीं आयीं और ऊँट होकर यहाँ आना पड़ा।

रामतीर्थ बोलते हैं- "ऐ बेचारे गरीब धनवानों ! तुम अपने रोम-रोम का बीमा करवा लो, हर नाखून का बीमा करवा लो, एक बाल टूटे और आपको लाख रूपये मिलें ऐसा कर दो फिर भी आप निश्चिंत नहीं हैं। जब तक निश्चिंतस्वरूप परब्रह्म परमात्मा की उपासना नहीं की , जब तक परमात्मा का चिन्तन करके परमात्मामय नहीं हुए तब तक तुम्हारे रूपये तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते, तुम्हारे मित्र तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते, चँवर डुलानेवाली रानियाँ और दासियाँ तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकतीं, तुम्हारे वजीर और सचिव तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते। परम सुरक्षित तो तुम्हारी आत्मा है। उस आत्मा में जब तक तुम्हारी यात्रा नहीं हुई तब तक हे पढ़े हुए मूर्ख ! हे निर्धन धनवानों ! तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। तुम्हारा धन धन नहीं है, तुम्हारी विद्या विद्या नहीं है। विद्या तो वह है जो राग- द्वेष से तुम्हें मुक्ति दे , जन्म मरण से मुक्ति दे। **सा विद्या या विमुक्तये।"**

यहाँ अर्जुन श्रीकृष्ण से कह रहा हैः "भगवान ! हमने जाना कि उपासना के बिना कुछ सार नहीं। आपके विश्वरूप का दर्शन करके हम दंग रह गये ! क्या वह आपका वास्तविक स्वरूप है या हमको आकर्षित करने के लिए, हमको जगाने के लिए थोड़ी देर का चमकारा है ? यदि वह चमकारा है, मायावी रूप है तो उसका चिन्तन करने से हमें लाभ न होगा। यदि वह आपका वास्तविक रूप है तो उसका चिन्तन किस प्रकार किया जाय?"

तब जगतबन्धु श्रीकृष्ण कहते हैं- "हे अर्जुन ! तेरी बुद्धि सचमुच पैनी है, सूक्ष्म है। तेरा सौभाग्य चमका है। लोगों के कल्याण के लिए तूने अच्छा प्रश्न पूछा है। अब तेरे कल्याण के लिए चिन्ता की बात क्या है?"

निरन्तर उपासना कैसे हो सकती है ? जो भी करेंगे शरीर और मन से करेंगे। शरीर सो जाता है तब मन जड़ीभाव को प्राप्त होता है। नींद में उपासना निरन्तर नहीं हो सकती। चालू व्यवहार में उपासना निरन्तर नहीं हो सकती। 'हरि.... हरि....' बोलते जाओ और अन्य सब व्यवहार करते जाओ, कालेज में व्याख्यान देते जाओ यह नहीं हो सकता। कभी-न-कभी विस्मरण होगा ही। आटा भी फाँकते जाओ और गाना भी गाते जाओ। यह कैसे संभव है ? योगी को भी नींद आयेगी तो उपासना खण्डित होगी। .....तो निरन्तर उपासना का अर्थ क्या?

अर्जुन पूछता हैः

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते....।

'आपकी निरन्तर उपासना करता है और अव्यक्त अक्षर की उपासना करता है इन दोनों में उत्तम योगवेत्ता कौन है?'

महाभारत में एक कथा आती है। रूक्मिणी ने किसी पर्व पर उत्सव किया। उत्सव में परिवार के एवं अन्य स्नेही, सम्बन्धी, मित्रादि लोगों की उपस्थिति आवश्यक होती है। श्रीकृष्ण

ने देखा कि मेरा प्यारा दोस्त अर्जुन नहीं आया है तो उसे बुलाने गये। उसके कक्ष में गये तो अर्जुन सो रहा है। श्रीकृष्ण धीरे- धीरे उसके पास गये। मित्रभाव है , विनोद से अठखेलियाँ करके जगाना चाहा। जब बिल्कुल नजदीक गये तो अर्जुन के हर श्वास के साथ 'कृष्ण.... कृष्ण....कृष्ण' की ध्वनि सुनाई देने लगी।

यह है सतत चिन्तन। हमारा चिन्तन मन से ही न हो। मन सो जाय तो हमारे प्राण वह कार्य शुरु कर दें। जैसे, जगत का व्यवहार तीव्रता से करते हैं तो स्वप्न में भी वह चालू हो जाता है, वैसे जाग्रत अवस्था में इष्ट का चिन्तन इतनी लगन से , इतनी गहरे भाव से हो कि निद्रा के समय भी अन्तर्मन से वह चिन्तन होता है रहे, प्राणों में उसकी धारा बहती रहे।

रूक्मिणी ने देखा कि भगवान अर्जुन को बुलाने गये हैं, अर्जुन तो नहीं आया, भगवान भी वापस नहीं आये। उत्सव में आये हुए नारदजी के भेजा उन्हें बुलाने के लिए। नारदजी ने जाकर देखा तो अर्जुन सोया हुआ है और भगवान उसके पास बैठकर ध्यान से कुछ सुन रहे हैं। नारदजी को देखकर श्रीकृष्ण ने इशारे से कहा कि आवाज किये बिना यह अजपाजाप की ध्वनि सुनो।

'वाह ! क्या चिन्तन है। श्वास-श्वास में श्रीकृष्ण की ध्वनि...!' नारदजी चकित रह गये।

'इसका मन शरीर के साथ जुड़ा है। शरीर सो गया है और मन खो गया है लेकिन इसका चिन्तन नहीं खोया है। नींद में भी चिन्तन चालू है। अर्जुन मेरा प्यारा है।' श्री कृष्ण बोले।

'जो आपका प्यारा है वह सारे विश्व का प्यारा है। उसके श्वास में चलती 'कृष्ण... कृष्ण' की ध्वनि के साथ मैं वीणा से ताल देता हूँ। ' नारद धीरे-धीरे वीणा के तार को झंकृत करने लगे और मस्त होने लगे। वे भूल ही गये कि मैं इन दोनों को बुलाने आया हूँ।

जहाँ सुख मिलता है वहाँ राग और द्वेष शांत हो जाते हैं । सुख के अभाव में ही राग- द्वेष सिर उठाते हैं। जहाँ परम सुख के द्वार खुले, आपको भीतर से आनंद आने लगा तो आपको प्यारे से प्यारे व्यक्ति से मिलने जाना होगा तो आप सोचेंगे कि अभी वह नहीं आया होगा। किसी के साथ शत्रुता हो, उसको सबक सिखाने का कार्यक्रम बनाया हो और आ गये सत्संग में, भीतर का सुख मिलने लगा तो वह कार्यक्रम मोकूफ रह जायेगा। इसीलिए युद्ध में जाते समय साधू, ब्राह्मण, संत, महात्मा का दर्शन अपशकुन माना जाता है क्योंकि संत- महात्मा ब्रह्मचिन्तन में लीन रहते हैं, अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं तो उनके दर्शन से, उनके 'वायब्रेशन' (स्पंदन) से आपके अंदर का द्वेष ठण्डा हो जायेगा। द्वेष ठण्डा हो गया तो आप तीव्रता से लड़ोगे नहीं और हार जाओगे। इसीलिए कहा गया है कि युद्ध के समय दर्शन करने मत जाना।

अर्जुन नींद में भी अपने आन्तरिक चिन्तन में मस्त है और श्रीकृष्ण उस आन्तरिक चिन्तन के चिन्तन में मग्न हैं। दोनों की मस्ती देखकर नारद भी वीणा का ताल देते हुए मग्न हो रहे हैं।

इधर रूक्मिणी ने सत्यभामा को भेजा कि देखो तो सही , अर्जुन को बुलाने भगवान गये और उनको बुलाने नारदजी गये ! कोई वापस नहीं आये ! तलाश करो क्या कर रहे हैं?

सत्यभामा ने जाकर वह मधुर दृश्य देखा तो वह मधुर स्वर से गाने लग गई। उसको गाते देखकर श्रीकृष्ण मस्त होकर नाचने लगे।

यह है **सततयुक्त** व्यक्ति के स्पंदनों का प्रभाव। जो केवल प्राणों से सततयुक्त होता है उसका इतना प्रभाव है तो जो स्वरूप से सततयुक्त हो गया है उसका कितना प्रभाव हो सकता है?

श्रीकृष्ण कहते हैं-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

व्यवहार तो अनेक से होता है लेकिन अनेक में जो छुपा है उस एक पर दृष्टि जमी रहनी चाहिये। घड़े अनेक लेकिन अनेक घड़ों में आकाश एक , तरंग अनेक लेकिन पानी एक , श्वास अनेक लेकिन श्वास का आधार एक , सृष्टियाँ अनेक लेकिन चैतन्य एक। इस प्रकार एक ही पर दृष्टि रखकर अनन्य भाव से जो मेरा चिन्तन करता है उस अनन्य भक्त का योगक्षेम मैं वहन करता हूँ, भगवान ऐसा वचन देते हैं।

योग माने अप्राप्त की प्राप्ति और क्षेम माने प्राप्त का रक्षण।

भक्त के उत्थान के लिए जिन चीजों की आवश्यकता है , खान-पान की, किताबों की, इत्यादि सब आवश्यकताएँ भगवान पूर्ण कर देते हैं। मिली हुई चीजों का संरक्षण भी भगवान ही करते हैं।

सेठ को अपनी आवश्यकताओं के लिए पैसे कमाने पड़ते हैं , बाजार से चीजें खरीदनी पड़ती है। ये चीजें नष्ट न हो जायें इसलिए रखवाली करनी पड़ती है। लेकिन जो अनन्य भाव से भगवान का भजन- चिन्तन करता है उसे पैसे कमाने कि चिन्ता नहीं करनी पड़ती , चीजें लेने बाजार में नहीं जाना पड़ता, चीजें सँभालने के लिए समय भी नहीं देना पड़ता। यह सब व्यवस्था ईश्वर की प्रेरणा से अन्य लोग कर लेते हैं। अनन्य भक्त को जिन चीजों की आवश्यकता होती वे चीजें पहले आ जाती हैं और बाद में उसकी आवश्यकता प्रतीत होती है।

श्रीधर स्वामी ने भगवद् गीता पर अनूठी टीका लिखी है , बड़ी प्रसिद्ध हुई है। लिखते-लिखते जब यह श्लोक आया तब उनको **योगक्षेमं वहाम्यहम्** शब्द प्रयोग ठीक नहीं लगा। भगवान कहते हैं कि मैं अनन्य भक्त का योगक्षेम वहन करता हूँ माने ढोता हूँ। भगवान मजदूर थोड़े ही हैं कि वहन करें ? भगवान ने शब्द- प्रयोग करने में थोड़ी जल्दबाजी की है। यहा **वहाम्यहम्** के बदले **ददाम्यहम्** शब्द चाहिए। भगवान 'योगक्षेम देते हैं' यह कहना उचित रहेगा। ऐसा सोचकर

श्रीधर स्वामी ने **वहाम्यहम्** शब्द को काटकर **ददाम्यहम्** शब्द लिख दिया। भगवद् गीता में यह सुधारा करके वे समुद्रस्नान करने चले गये।

इधर एक छोटा- सा राजकुमार बा लक सिर पर दाल- चावल की गठरी सिर पर उठाकर उनके घर पहुँचा और आवाज लगाई। श्रीधर स्वामी की पत्नी ने देखा तो अदभुत व्यक्तित्ववाला सुकुमार बालक ! सिर पर एक गठरी और उसके होठों से खून बह रहा है ! तुरन्त पूछाः

"अरे बेटे ! किस बदतमीज ने तेरे जैसे प्यारे बालक को मारा है? यह खून बह रहा है !"

बालक ने दाल-चावल की गठरी देते हुए कहाः "माताजी ! अभी-अभी श्रीधर स्वामी ने मेरे मुँह पर मारा है और बाहर गये हैं।"

माताजी बड़ी दुःखी हुई। सोचाः 'पण्डित जी को घर आने दो , खबर लेती हूँ।' बालक तो गठरी देकर चला गया। पण्डित जी घर लौटे तो पत्नी बोलती हैः

"आप में जरा भी रहम नहीं है? आज अपने घर में दाल-चावल का दाना भी नहीं है। एक छोटा-सा सुकुमार फूल जैसा बच्चा सिर पर गठरी उठाकर देने आ रहा था तो उसे आपने मुँह पर तमाचा मारा? बेचारे को होठों से खून बह रहा था।"

श्रीधर स्वामी ने कहाः "नहीं नहीं..... मैंने किसी को नहीं मारा। किसका बच्चा था ? कैसा था? कहाँ गया?"

पत्नी बोलीः "किसका बच्चा था, यह मैं नहीं जानती लेकिन था बड़ा प्यारा। कोमल नन्हा-मुन्ना, ओजस्वी-तेजस्वी वह लाल बड़ा सुहावना लग रहा था। जैसे आया था वैसे चला गया। पता नहीं कौन था.... कहाँ गया?

श्रीधर स्वामी समझ गये किः "अरे ! वही निराकार सच्चिदानन्द परमात्मा चैतन्य का साकार स्वरूप कृष्ण-कण्हैया स्वयं थे। घर में अन्न नहीं थे तो गठरी उठाकर खुद देने आये , मेरे योगक्षेम का वहन किया। मैंने उनके शब्द को काटा , उनके वचन को काटा माने उनके मुख पर प्रहार ही किया।" उन्होंने अन्तरतम से महसूस किया कि हाँ....। भगवान सचमुच अनन्य भक्त के योगक्षेम का वहन करते हैं।

'ददामि' शब्दप्रयोग करें तो देने वाला दाता हो जाता है और लेने वाला भिखारी हो जाता है। भगवान का भक्त भिखारी नहीं होता। वह स्वयं सम्राट होता है। भगवान उसके आगे भिखारी होने में अपना सौभाग्य मानते हैं। अपने प्यारे बच्चे के आगे बाप अपने को सेवक मानता है , उसको कन्धे पर चढ़ाकर वहन कर लेता है। ऐसे ही भगवान अपने अनन्य भक्त को अपने से ऊँचे देखकर खुश होते हैं।

ऐसे मधुरतम परमात्मा को छोड़कर जो मित्रों को, पैसों को, पत्नी को, परिवार को सुख का साधन मानते हैं, सत्ता और धन को ही अपना रक्षक मानते हैं उन लोगों की मति सचमुच उस ऊँट जैसी है। ऊँट भी सम्राट था और उसने खूब सँभाला था। रामायण में ठीक ही कहा हैः

उमा तिनके बड़े अभाग, जे नर हरि तजि विषय भजहिं।

परमात्मा को छोड़कर जो विषयों का चिन्तन करते हैं उनके बड़े दुर्भाग्य हैं। विष में और विषय में अन्तर है। विष का चिन्तन करने से मौत नहीं होती , विष का चिन्तन करने से पतन नहीं होता, विष जिस बोतल में रहता है उस बोतल का नाश नहीं करता लेकिन विषय जिस चित्त में रहता है उसको बरबाद करता है , विषय का चिन्तन करने मात्र से पतन होता है , साधना की मौत होती है। विषय इस जीव के लिए इतने दुःखद हैं कि समुद्र में डूबना पड़े तो डूब जाना , आग में कूदना पड़े तो कूद पड़ना, विषधर को आलिंगन करना पड़े तो कर लेना लेकिन लीलाशाह बापू जैसे महापुरुष कहते हैं किः "भाइयों ! अपने को विषयों में मत गिरने देना। आग में कूदोगे तो एक बार ही मृत्यु होगी, समुद्र में डूबोगे तो एक बार ही मृत्यु होगी लेकिन विषयों में डूबे तो न जाने कितनी बार मृत्यु होगी इसका कोई हिसाब नहीं।"

शाम को सरिता के किनारे शांत वातावरण में बैठे थे साधकों के बीच। सत्सग शुरु ही हो रहा था कि एक कौवा मेंढक को चोंच में पकड़कर उड़ा। मेंढक का क्या करुण क्रन्दन था। ट्रें ... ट्रें... ट्रें....। कौवे ने उसे चोंच में बुरी तरह दबाया था। मैंने साधकों से कहाः

यह मेंढक भी कभी मनुष्य बना होगा। इसके भी कहीं पत्नी , पुत्र, परिवार, धन, सत्ता, साम्राज्य... कुछ-न-कुछ डिमडिम अपने ढंग का रहा ही होगा। वह सारा डिमडिम आज उसको कौवे की चोंच से नहीं छुड़ा सकता है। हाय रे विधि तेरी लीला ! हाय रे प्रारब्ध ! हाय रे जीव तेरी बेवकूफी ! तू मनुष्य बना था उस समय परमात्मा का चिन्तन करके बच जाता जन्म मरण के चक्र से। आज कौवे की चोंच से अपने को नहीं छुड़ा सकता है।

उस मेंढक को हम भी नहीं छुड़ा पाये। कौवा तो उसको लेकर उड़ गया। हम कौवों के पीछे कितना भागेंगे ? कौवा उसे छोड़ भी देता तो वह तड़प- तड़पकर मरता अथवा दूसरे कौवे पकड़ लेते।

ऐसी वैराग्य जगानेवाली घटनाएँ तो प्रतिदिन, प्रतिक्षण घटती रहती हैं लेकिन हमारा चित्त विषयों से इतना आक्रान्त कर देते हैं। कई लोग अर्थी को देखकर बोल पड़ते हैं- 'हाय ! बेचारा मर गया।' समझते नहीं कि अपने को भी मर जाना है यार ! जगते नहीं और उसी विषय-सेवन की पुरानी पटरियों पर जीवन की गाड़ी दौड़ाये जा रहे हैं।

भोजू कुल्फी बेचने का धन्धा करता था। बड़ा लोभी था। कभी धन्धे से छुट्टी नहीं करता था। कुल्फी का डिब्बा कन्धे पर उठाता और चिल्लाताः "कुल्फी.... मावेवाली ठण्डी मीठी

कुल्फी....!" वह न कभी रविवार देखता न एका दशी देखता, न पूर्णिमा देखता न अमावस्या देखता। सोचता दौ पैसे मिलेंग , अपने काम में आयेंगे। उस नादान को पता नहीं था कि रूपये काम नहीं आते, तेरा परमात्म-चिन्तन काम आयेगा। परमात्म-चिन्तन यदि दृढ़ है तो पैसे उसके दासों के भी दास हैं।

एक बार भोजू के पड़ोस में कि सी की मृत्यु हुई। पत्नी ने लोभी भोजू को खूब समझा-बुझाकर छुट्टी करवाई। भोजू स्मशान- यात्रा में शामिल हुआ। उसके कन्धे पर अर्थी आते ही वह चिल्ला उठाः

"कुल्फी..... मावेवाली ठण्डी मीठी कुल्फी....."

पासवाले ने उसे हिलाया कि यह क्या बोल रहे हो पागल?

चित्त की गहराई में जो चिन्तन होता है वही उभर आता है।

राजा भोज के दरबार में एक धुरन्धर विद्वान आया। वह हर भाषा इतनी सफाई से बोल सकता था मानों वह उसकी मातृभाषा ही हो। उसकी असल मातृभाषा कौन- सी है यह बता पाना कठिन था।

उसने राजदरबार में चुनौतीपूर्ण घोषणा कर दी कि जो विद्वान मेरी मातृभाषा बता देगा उसे मैं लाख रूपये इनाम दूँगा, अन्यथा प्रतिदिन राज्य की ओर से मुझे लाख रुपये मिलते रहें।

राजा भोज विद्वानों की कद्र करता था। उस विद्वान की शर्त मान ली गई। लेकिन दरबार का कोई विद्वान तय नहीं कर पाया कि उसकी मातृभाषा कौन- सी है। राजदरबा र हार गया। वह विद्वान लाख रुपये लेकर चलता गया। दूसरे तीसरे और चौथे दिन भी यही हुआ। राज्य के रूपये तो जा रहे थे, साथ में राजदरबार की प्रतिष्ठा भंग हो रही थी।

आखिर कालिदास के पास बात पहुँची। वे बोलेः अच्छा ! मैं उसकी मातृभाषा का पता लगा दूँगा।"

उस दिन भी वह विद्वान लाख रूपये जीतकर दरबार से जाने लगा तो बाहर सीढियाँ उतरते समय कालिदास ने उसके घुटनों पर प्रहार किया। वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा। आगबबूला होकर गिरते-गिरते अपनी मातृभाषा में चिल्लाया, बड़बड़ाया।

कालिदास उसके पास बैठ गये। उसके घुटने दबाते हुए बोलेः "क्षमा करना, आपकी मातृभाषा फलानी है। और कोई उपाय न था यह जानने का। इसलिए यह धृष्टता की है। क्षमा करना, मैं आपके पैर को चंपी कर देता हूँ।"

आपके अचेतन मन में क्या छुपा है, ऐन मौके पर उसका पता चल जाता है। जब एकदम कोई मुसीबत आती है तब 'हाय....!' निकलती है कि 'हरि....' निकलता है यह देखना जरा। ठोकर

लगती है, चोट लगती है तब डॉक्टर याद आता है कि अपना सच्चिदानन्दस्वरूप याद आता है ? 'ठोकर भी मैं हूँ, ठोकर खाने वाला भी मैं हूँ और ठोकर को देखने वाला भी मैं हूँ .... शिवोऽहम्... ऐसा निकलता है कि और कोई कचरा निकलता है ? यदि कचरा नि कलता है जल्दी से नदी में डाल देना, बहा देना।

आकार में निराकार दिखता है कि निराकार में आकार दिखता है ? आकृति में सत्यता दिखती है कि आकृति में विकृति दिखती है यह जरा अपने भीतर निहारना। गहरा चिन्तन करना। आप गायत्री मंत्र का जप करते हैं तो कोई सासांरिक चीजें माँ गते हैं कि बुद्धि पवित्र हो ऐसी प्रार्थना करते हैं? पवित्र बुद्धि में ही आत्म-साक्षात्कार की क्षमता आती है।

गायत्री जपना या न जपना यह कोई बड़ी बात नहीं , त्यागी होना या धनवान होना कोई बड़ी बात नहीं। हजारों धनवान् भटकते हैं , लाखों निर्धन भटकते हैं , कई त्यागी घूमते हैं। मैं देखकर आया हूं दिल्ली में, बम्बई में, कलकत्ता में, अहमदाबाद में। देवी के आगे बलि चढ़ानेवाले भी भटकते हैं। मंदिरों में जाना कोई बड़ी बात नहीं, दूसरों के दुःख देखकर आँसू बहाना कोई बड़ी बात नहीं, देवता होकर सुवर्ण के विमान में घूमना कोई बड़ी बात नहीं, स्वर्ग में अमृतपान करना कोई बड़ी बात नहीं। बड़ी बात तो तब है....

जहाँ में उसने बड़ी बात कर ली,
जिसने अपने आपसे मुलाकात कर ली।

जिसने यह सबसे महान् कार्य सम्पन्न कर लिया उसके लिए **सर्वं खल्विदं ब्रह्म।** व्यक्त अव्यक्त सब परमात्मा है। नाम- रूप हटाने के लिए साधक को प्रारम्भ में उपदेश दिया जाता है कि देह को बाधित करके भीतर जो है वह आत्मा है। भीतर ढूँढोगे तो और कुछ नहीं मिलेगा। भीतर बाहर एक ही तत्त्व है। पानी गरम होकर वाष्प बन जाय या ठण्डा होकर ठोस बर्फ बन जाय, तत्त्वरूप से वह पानी ही है।

अलग-अलग आकारवाले बर्तनों में पानी भरके फ्रिज में रख दो तो बर्फ की अलग- अलग आकृतियाँ बन जायेंगी। कोई राजा होगा , कोई साहब होगा, कोई नौकर होगा कोई गुड़िया होगी , कोई हाथी होगा कोई घोड़ा होगा। पानी को यदि गरम करो तो वह वाष्प बन जायेगा। ये अलग-अलग खिलौने और वाष्प आखिर पानी ही तो है। तत्त्व घनीभूत हो गया है अतः उसमें परिवर्तन दिखता है। परिवर्तन माया है और जो वास्तविक है उसमें परिवर्तन नहीं होता।

परिवर्तन-अपरिवर्तन भी मन की दृष्टि से देखा जाता है। हमारा मन बदलता रहता है। हम जब अमनीभाव को प्राप्त हो जायें तो पता चले कि सत्य बदलता है नहीं और माया का खेल रूकता नहीं।मन-इन्द्रियों में आकर देखते हैं तो सब परिवर्तन दिखता है। स्वरूप में देखें तो कुछ नहीं। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, निर्मल आत्मसत्ता ज्यों-की-त्यों अपने आप में स्थित है। उसके लिए कुछ बोलना नहीं होता। मौन। अपने आप में स्थित है। उसके लिए कुछ बोलना नहीं होता। मौन।

मौन का मतलब वह सत्ता शून्य है ऐसी बात नहीं। कुछ नहीं है का मतलब उसका कुछ बयान नहीं हो सकता। बयान करने के लिए उससे थोड़ा पृथक होना पड़ेगा , बाहर आना पड़ेगा। वह ऐसा तत्त्व है।

इसीलिए श्री उड़िया बाबा ने कहाः "मैं सशरीर ब्रह्म हूँ। " शास्त्र कहते हैं- **ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।** जब सब ब्रह्म है तब पूछ रहे होः साकार की उपासना करें कि निराकार की ? घोड़ों की बागडोर हाथ में लिये रथ पर बैठे श्यामसुन्दर की उपासना करें कि उनके अन्दर जो आत्मा है उसकी उपासना करें, उसको भगवान मानें?

भाई ! जिसमें तेरी प्रीति हो उसको भगवान मान और उपासना कर। बुद्धि प्रधान है तो तत्त्वचिन्तन कर, आत्मविचार कर और आनंदित हो जा। भावप्रधान है , ग्वाल और गोपियों जैसा हृदय है तो नन्हें- मुन्ने कृष्ण कृष्ण- कन्हैया को निहार , उससे प्रीति कर। ते री वृत्ति कन्हैयाकार बनेगी तो जगदाकार वृत्ति टूट जायेगी और आनंद आने लगेगा, अन्तर्मुख होता जायेगा और धीरे-धीरे निराकार ही छलकने लगेगा। एक ही बात है साकार-निराकार की उपासना में।"

क्या उत्तम है? साकार उपासना कि निराकार उपासना ? आपके चिन्तन की गहराई उत्तम है। जिस उपासना में आपका चित्त नितान्त गहरा उतर सकता है वह उपासना आपके लिए उत्तम है। आप साइकिल पर जा रहे हैं तो प्रति घण्टे 15 कि.मी. की गति उत्तम है, कार में जा रहे हैं तो 60 किं.मी. की गति उत्तम है, हवाई-जहाज में जा रहे हैं तो 400-500 कि.मी. की गति उत्तम है।

आपके पास चित्त कैसा है, समझ कैसी है, वातावरण कैसा है इस पर आपकी यात्रा निर्भर करती है। धन्ना जाट जैसा आदमी भी प्रभु को मिल सकता है , शबरी भीलन भी श्रीराम से मिल सकती है, गोरा कुम्हार भी ईश्वर से मुलाकात कर सकता है , वालिया लुटेरा भी सतत्त्व को पा सकता है। अब कौन-से साधन को मानें?

वालिया लुटेरा का मंत्र था 'मरा.... मरा.... मरा.... मरा...' और ध्रुव का मंत्र था 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।' धन्ना जाट का क्या मंत्र था ? पण्डित गुरु ने भाँग घोटने का सिलबट्टा शालिग्राम के रूप में धन्ना को देते हुए कहा थाः "नहाके नहलइयो, खिलाके खइयो।"

धन्ना जाट को भगवान की मूर्ति में पूर्ण श्रद्धा थी , पूरा भगवद् भाव था। स्वयं स्नान करके भगवान को स्नान कराया। फिर भगवनान को भोग लगाया। भगवान भोग लगा लें तो बाद में प्रसाद लेना होगा। अब मूर्ति क्या भोग लगाये ? लेकिन धन्ना जाट के हृदय में कतई सन्देह न था। गुरु ने जो कहा था उस पर उसका पूरा भरोसा था। वह बैठ गया निराहार। आखिर आ गया आत्मविलोपन के निर्णय पर। भगवान से बोलाः "अब आता है कि नहीं आता है ?" भगवान मूर्ति में से प्रकट हो गये। ऐसा मंत्र था धन्ना जाट का। उसके लिए वही उत्तम था।

शबरी के गुरु मतंग ऋषि ने शबरी को कहा थाः "तू यहाँ साधना करते रहना, भगवान के लिए आँगन बुहारते रहना। एक दिन भगवान जरूर पधारेंगे।"

सरोवर काँठे शबरी बेठी धरे रामनुं ध्यान।
एक दिन आवशे स्वामी मारा अन्तरना आराम।।

शबरी का चिन्तन ऐसा गहरा है कि बाहर की भूख- प्यास, सर्दी-गर्मी उस पर कुछ प्रभाव नहीं डालती। राग-द्वेष या प्रतिकूलता के प्रसंग उसके चित्त को बाहर नहीं लाते।

हररोज ऋषियों की पगडण्डियाँ बुहारना , भगवान के आगमन की प्रतीक्षा करना , आँगन साफ-सुथरा रखना, भगवान के लिए चख- चखकर मीठे बेर इकट्ठे करना , गहराई से प्रभु का चिन्तन करना - वर्षों तक यही सिलसिला। शबरी के लिए वह उत्तम था। आप यदि शबरी की नकल करोगे तो मजा नहीं आयेगा।

आप श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हैं तो कीजिये, अल्लाह का चिन्तन करते हैं तो कीजिए, झूलेलाल का चिन्तन करते हैं तो कीजिये और यदि सदगुरु प्राप्त हैं , बुद्धि विकसित है, श्रद्धा है, पुण्य है तो चिन्तन कीजिये किः **"शिवोऽहम्.... सच्चिदान्दोऽहम्... आनन्दस्वरूपोऽहम्..."** वाह वाह ! मैं गुरु होकर उपदेश दे रहा हूँ ... शिष्य होकर सुन रहा हूँ .... सब मेरे ही रूप हैं। मैं श्रीकृष्ण होकर आया था, बुद्ध होकर आया था, महावीर होकर आया था। अनेक शरीर आ जायँ और मर जायँ, मिट जायँ, फिर भी मेरा नाश नहीं होता। क्योंकि अनन्त शरीरों में मैं ही हूँ ..... "ॐ....ॐ....ॐ....." आपके लिये यह मार्ग उत्तम हो सकता है।

आपके चिन्तन का सातत्य कहाँ है यह बात महत्त्व की है। चालू व्यवहार में भी वह अनुसंधान बना रहे तो मंजिल जल्दी तय हो जाती है।

स्वामी रामतीर्थ एक घटना सुनाया करते थे। ब्रिटिश सरकार के जमाने की बात है। एक सरकारी अमलदार घोड़े पर कहीं जा रहा था। रास्ते में घोड़े को प्यास लगी तो पास में कुएँ पर जहाँ अरट चल रहा था वहाँ पानी पिलाने गया। अरट चलने से आने वाली खट .... खट.... खट... खट.... आवाज सुनकर घोड़ा बिदक गया।। उसने पानी नहीं पीया। वह भी साहब का घोड़ा था , अहंकारी का घोड़ा था

आदमी जितना अहंकारी होता है उतना भीतर से डरपोक होता है , जितना विषयी होता है उतना ज्यादा भयभीत होता है।

मेरे पास एक महिला आयी और बोलीः

"बापू ! मेरे पास हीरे- जवाहरात के गहनों के सात सेट हैं। हररोज अलग- अलग सेट पहनती हैं। एक सेट करीब लाख-डेढ़ लाख का होता होगा। और तो सब कुछ है लेकिन जीवन में शांति नहीं है, हृदय में सुख-चैन नहीं है।"

इतने में कुछ आवाज आयी तो वह चौकन्नी हो गई, डर गई। मैंने पूछाः "बहन ! इतना डरती क्यों है?"

"बाबाजी ! मैं क्या बताऊँ? मुझे बहुत डर लगता है। क्या कारण है, पता नहीं। छिपकली को देखकर भी मेरी धड़कन बढ़ जाती है।"

मैंने कई बार निरीक्षण किया है कि व्यक्ति का जीवन जितना विलासी होता है, धन-वैभव-संपत्ति से आक्रान्त होता है उतना वह भीतर से खोखला होता है, भयभीत होता है।

उस अमलदार ने किसान को हुक्म कियाः "इस खट-खट आवाज को बन्द कर।" किसान ने अरट चलाना बन्द कर दिया। खट- खट तो बन्द हो गई लेकिन साथ में पानी भी आना बन्द हो गया। अमलदार चिढ़कर बोलाः "मैंने अरट की खट-खट आवाज बन्द करने को कहा था, पानी बन्द करने को नहीं कहा था।"

"साहब मेरे ! गुस्ताखी माफ हो। पहले खट- खट होगी, बाद में पानी निकलेगा। यदि आपके घोड़े को प्यास लगी हो तो चालू खट- खट में ही उसे पुचकारकर पानी पिला दो। चालू खट-खट में ही अपना काम बना लो।"

हाँ, आप भी चालू खट-खट में अपना काम बना लो। चाहे साकार में या निराकार में , जिसमें आपकी प्रीति हो उसमें मन लगा दो। इस मिथ्या जगत के आकर्षणों से बचकर संसारसागर से पार हो जाओ।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आन्तर-शुद्धि

कुछ नये लोगों को ऐसा महसूस होता है कि ज्यों- ज्यों अध्यात्मज्ञान में आगे बढ़ते हैं, साधना करते हैं त्यों-त्यों भीतर घबड़ाहट होती है, चित्त विक्षिप्त-सा बनता है। ऐसा होने का सही कारण अध्यात्म-साधना नहीं बल्कि पहले का असंयमी जीवन है , यम-नियमों का किया हुआ उल्लंघन है। इसके कारण अंतःकरण अशुद्ध हो जाता है और अशुद्ध अंतः करण में भय , चिन्ता, उद्वेग अशांति नहीं रहेंगे तो और कहाँ रहेंगे?

ज्यों-ज्यों आत्मविकार बढ़ता जायेगा, जीवन जीने का सही ढंग आता जायेगा, यम-नियमों का अनुशीलन होता जायेगा , जीवन में संयम बढ़ता जायेगा त्यों- त्यों अंतःकरण शुद्ध होता जायेगा, सत्त्वप्रधान होता जायेगा।

सत्त्वात्संजायते ज्ञानम्।

सत्त्वप्रधान अंतःकरण में आत्मज्ञान का उदय होता जायेगा। आत्मज्ञान के लिए आत्मविचार का अभ्यास बढ़ाना चाहिये। आत्मविचार माने शरीर , वाणी, मन, बुद्धि से परे की अवस्था में तन्मय हो जाना। उस समय जो आनंद का अनुभव होता है वही हमारा वास्तविक आत्मस्वरूप है ऐसी दृढ़ निष्ठा जमाते जाना।

शत्रु हमारे घर पर कब्जा जमा ले तो जल्दी छोड़ता नहीं। उसको भगाने के लिये कठोर कदम उठाने पड़ते हैं। वैसे ही आज तक हमारी इन्द्रियों ने मनमानी चेष्टा की है , मन ने चाहे जैसे विचारों का सेवन किया है। उस पर किसी की लगाम नहीं रही। अब उस पर अंकुश लगेगा तो वह पसन्द नहीं करेगा। अभ्यास डालना पड़ेगा विषय- विकारों को दूर करने के लिए। प्रारम्भ में मन बेचैन होगा लेकिन पुरुषार्थ जारी रखें। क्रमशः ऐसा समय आयेगा जब इन्द्रियाँ आपकी गुलामी हो जायेंगी। चित्त में स्वाभाविक शांति व सामर्थ्य प्रगट होगा। सदविचारों में रमे रहना , सदाचार का आचरण करना , आत्मानुसन्धान में मस्त रहना स्वभाव बन जायेगा। निर्भयता , निश्चिंतता और प्रसन्नता सहज साध्य होगी।

ध्यान व आत्मविचार करने के लिए बैठेंगे तो कभी- कभी संकल्प-विकल्पों का जोर बढ़ता हुआ मालूम पड़ेगा। सामान्य दिनचर्या के समय जितने विचार उठते हैं उससे अधिक मात्रा में विचार उठते दिखेंगे। मन को शांत करना अत्यंत दुष्कर लगेगा। कई साधकों को ऐसा अनुभव होता होगा।

ऐसे प्रसंग पर मन में उठते हुए विचार व संकल्प- विकल्प दबाने की को शिश न करें। बन्दर को शांत बनाने के लिए जबरदस्ती करने से वह और अशांत हो जाता है। संकल्प- विकल्पों के दृष्टापन का उपाय भी सहायभूत न होता हो तब सोचें कि , 'ये संकल्प-विकल्प मुझसे भिन्न नहीं। जैसे सागर में उठती हुई तरंगे जल से भिन्न नहीं , जल ही हैं, चाहे वे तरंगे कितनी भी बड़ी हों। ऐसे ही संकल्प- विकल्प कैसे भी हों , वे मुझ चैतन्य से भिन्न नहीं। मैं ही संकल्प-विकल्प रूप हो रहा हूँ। ' दृढ़ता से ऐसा विवेक किया तो मन शांत होने लगेगा , संकल्प-विकल्पों का जोर टूट जायेगा, चित्त की प्रशांति-ब्रह्मभाव की मस्ती बढ़ती जायेगी।

एक तरफ स्थूल शरीर है और दूसरी तरफ सूक्ष्मता की पराकाष्ठारूप आत्मा है। इन दोनों के बीच मन है। मन की अपनी निजी सत्ता नहीं है। शरीर के साथ जुड़ता है तो मन कहलाता है और आत्मा का चिन्तन करके आत्मस्वरूप में डूबता है तो वह आत्मारूप हो जाता है।

ध्यान अथवा आत्मखोज के समय, 'मैं कौन हूँ' इस प्रश्न के द्वारा तत्त्वानुसन्धान के समय मन जिस भाव में लीन होता है उसी भावरूप हो जाता है। मन को बार- बार आत्मचिन्तन में लगाने से शरीर के साथ मिल जाने की सदियों पुरानी आदत छूटती जायेगी। मन मनरूप से मिटता जायेगा.... हम आत्मस्वरूप में जगते जायेंगे। मन का मन के रूप में नामशेष हो जाना ही उसका सर्वश्रेष्ठ कल्याण है।

आत्मा को समझो भाप जैसा और शरीर को समझो बर्फ जैसा। इन दोनों के बीच की जलरूप अवस्था है मन। भाप , जल और बर्फ तत्त्वतः तीनों एक हैं फिर भी तीनों के लक्षण व उपयोग अलग-अलग हैं। जल को गर्म करेंगे तो भाप बन जायेगा, सूक्ष्म छिद्रों से भी अपने आप गुजर जायेगा। उसको यदि ठण्डा करेंगे तो बर्फ बन जायेगा , जड़ बन जायेगा। उसको उठाने के लिए मजदूर चाहिये। इसी प्रकार मन को आत्मचिन्तन में लगायेंगे तो वह आत्माकार हो जायेगा और आनंद व मुक्ति का अनुभव करेगा। मन को शरीर के साथ जोड़कर 'मैं शरीर हूँ' ऐसी सदियों पुरानी भ्रान्त कल्पना को पुष्टि देंगे तो वह शरीररूप भासेगा, शरीर के सम्बन्धों को सत्य मानेगा और दुःखों की गहन खाई में गिरेगा।

जन्म से ही मन को शरीर के साथ मिल जाने की आदत है। अभ्यास के बल से मन जब आत्मचिन्तन करके आत्माकार होने लगेगा तब शरीर के साथ मिल जाने में उसे संकोच होगा। ऐसा संकोच होना ही वैराग्य है।

छोटी-से-छोटी गलती की ओर भी लापरवाह न रहो। अपनी गलती की ओर लापरवाह रहना यह तमोगुण का चिह्न है। छोटी गलती होने देंगे तो बड़ी- बड़ी गलतियाँ करने का प्रलोभन जगेगा। फिर ऐसी आदत बन जायेगी तो अपने स्वभाव को बदलना दुष्कर हो जायेगा। अतः छोटी-से-छोटी गलती को मूलतः उखाड़ फेंकने के लिये तत्पर रहो।

सब लोग शक्तिपूजकक हैं। जब तक लोग हममें शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक-किसी प्रकार की शक्ति को देखेंगे , उसके उपयोग से लाभ पा येंगे तब तक हमारी हस्ती को मानेंगे , आदर-मान देंगे। हममें जब ये शक्तियाँ नहीं रहेंगी , हम लोकोपयोगी नहीं रहेंगे तब लोग हमारी ओर निगाह तक नहीं डालेंगे। व्यवहार-जगत में ऐसे कई उदाहरण देख सकते हैं। अतः सावधान ! शारीरिक व मानसिक शक्तियों से परे , प्राकृतिक क्षेत्र से परे, अपने आत्मस्वरूप में जगने का अभ्यास कर लो, स्वाधीन अतःकरण बनकर सब पराधीनताओं से पार हो जाओ। मन कभी पूर्ण शांत होने वाला नहीं है। मन ही जगत है। जगत के रहते हुए , जगत के पदार्थों से, जगत की परिस्थितियों से शांति मिलने वाली नहीं है। 'हम स्वयं शांतिस्वरूप आत्मा हैं....' यह बोध होने मात्र से शांति प्राप्त होगी। जब तक यह बोध नहीं होता तब तक शांति पाने के लिए मन की चेष्टाएँ पूर्णतः सफल नहीं होगी।

चारों ओर पूर्ण अशांति हो , मन विह्वल बन गया हो , सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार का साम्राज्य दिखता हो तब भी आप तो अनन्त तत्त्वरूप शांतिस्वरूप ही हो। ऐसा आत्मबोध ही सच्ची अखण्ड शांति देता है।

जब मन न था, आप नहीं थे, जगत नहीं था तब जो तत्त्व था , अस्तित्त्व था उसे ईश्वर कहो, परमात्मा कहो, चाहे ब्रह्म कहो। उसी में से हमारी , आपकी व पूरे विश्व की उत्पत्ति हुई है। उस परमात्मा में अपना मन लीन होने देने से बोध होता है कि हम ही वह निर्मल अस्तित्त्व हैं

और पूरा विश्व हमारा मनोव्यवपार मात्र , कल्पना मात्र है। जैसे एक महासागर है। वह स्थिर है , शांत है, गंभीर है। उसमें एक तरंग उठी , दूसरी उठी, तीसरी उठी। ऐसी अनंत- अनंत तरंगे उठीं और लीन हो गईं। फिर से उठीं और लीन हो गईं। महासागर का कुछ बना नहीं , कुछ बिगड़ा नहीं। वह ज्यों का त्यों है। उसी प्रकार मैं , आप, वह-सब एक ही चैतन्यरूपी महासागर की तरंगें हैं। कोई तरंग बड़ी है कोई छोटी है। लेकिन हैं सब तरंगे। सब तरंगे जलरूप ही हैं , जल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। तरंगों को बोध हो जाय कि 'मैं जलरूप हूँ....' तो यही उसकी मुक्ति है। वैसे ही चैतन्यसमुद्र में तरंगों के समान बने हुए जीव को बोध हो जाय कि 'मैं चैतन्य ही हूँ...' तो यही उसकी मुक्ति है।

तरंग है जीवभाव, समुद्र है ईश्वरमात्र और जल है ब्रह्मभाव। जल ही तरंग व समुद्र बना है। तरंग छोटी हो चाहे बड़ी, वह जल ही है। उसे जल बनना नहीं है। ऐसे ही जीव कैसा भी हो वह ब्रह्मरूप ही है। ब्रह्म बनने का अभ्यास नहीं करना है, केवल जानना है अपने ब्रह्मत्व को।

यदि ऐसा है तो ब्रह्माभ्यास , आत्मचिन्तन व तमाम साधनाएँ करने को क्यों कहा जाता है? ठीक से समझ लेना जरूरी है कि ये सब साधनाएँ ब्रह्म बनने के लिए नहीं हैं बल्कि जीवपने का जो उल्टा अभ्यास हो गया है उसे मिटाने के लिए हैं। उल्टा अभ्यास मिट गया , जीव मिट गया तो हम ब्रह्म ही हैं।

जीव ईश्वर नहीं हो सकता। जीव को ईश्वर बनाने का प्रया स बेकार है। लेकिन जीव ब्रह्म तो है ही। तरंग सागर नहीं हो सकती लेकिन तरंग जलरूप तो है ही। जीव को अपने ब्रह्मत्व का स्मरण नहीं है उसका कारण है अविद्या, अज्ञान। अविद्या में आया हुआ चैतन्य जीव है और माया में आया हुआ चैतन्य ईश्वर है। जीव अविद्या के आधीन हैं ले किन ईश्वर माया के आधीन नहीं है। ईश्वर माया के स्वामी हैं। जीव में से अविद्या को हटा दो , ईश्वर में से माया को हटा दो दोनों एकरूप ही हैं, ब्रह्म ही हैं।

हमें कोई पूछे कि, 'जगत कितना बड़ा है?' तो कहें- 'साढ़े पाँच फीट का।'

इस साढ़े पाँच फीट के देह को भूल जाओ तो सारा जगत गायब। प्रगाढ़ निद्रा के समय मन सो जाता है , अहंभाव नहीं रहता, देह का भान नहीं रहता तो जगत की प्रतीति भी नहीं होती। हमारे लिये जगत का अभाव हो जाता है। उस समय कोई दुःख भी नहीं रहता।
जाग्रतावस्था में ही देह से अहंभाव निकाल दें तो शोक व दुःख कहाँ रहें गे? देहभाव दूर होते ही ताजगी, आनंद, उत्साह का अनुभव होगा जो आत्मा का स्वभाव है। देहभाव हटाने के लिए 'मैं आत्मा हूँ' यह भाव लाना है। अभ्यास से शांति एवं आनंद की स्थिति सहज बन जायेगी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आत्मनिरीक्षण

एक शिल्पी ने अत्यंत सुन्दर मूर्ति बनायी। काम पूरा होने पर उसने मूर्ति की ओर खूब सूक्ष्मता से निहारा और फिर रोने लगा। लोग इकट्ठे हो गये। शिल्पकला को जानने वाले लोगों ने पूछाः "इतनी बढ़िया मूर्ति बनायी है। उसे देखकर रोते क्यों हो?"

"मैंने मूर्ति बनायी। फिर ढूँढा कि इसमें क्या कमी रह गई है , लेकिन मुझे इसमें कोई कमी नहीं दिख रही है। मुझे मेरी कोई कमी नहीं दिखती तो क्या मेरा ज्ञान यहीं रुक जायेगा ? मैं इतना क्षुद्र हूँ कि मुझे अपनी कमी दिखती?"

कलाकार की क्या सजगता है !

अपनी कमी न दिखना यह मूर्खता है और कमी दिखाने वाले की करुणा न दिखना यह महा मूर्खता है। आपको कोई दिखाये कि आपमें यह गलती है तो आप उसको धन्यवाद दीजिये , उसको प्रणाम कीजिये। वह आपके लिए सीखने-सुधरने का, विकास करने का द्वार खोल रहा है।

अपनी कमी स्वयं ढूँढ लो और स्वीकार कर लो तो आपको प्रणाम है। धन्यवाद के पात्र हैं आप। अपनी कमी नहीं दिखती है तो उसे ढूँढिये , ढूँढने पर भी नहीं मिलती तो रोइयेः 'हमारी दृष्टि इतनी सीमित हो गई है कि अपनी कमी नहीं दिखती?'

जैसे दूसरों की कमी जल्दी दिखती है और अपना सदगुण जल्दी दिखता है ऐसे ही अपनी कमी दिखे और दूसरों के सदगुण दिखें। अपनी कमी के प्रति निराश होकर कमजोर न बनो। कमी निकालने के लिए प्रयत्नशील रहो तो उत्थान होगा।

कमी और विशेषता होती है शरीर में, मन में, अंतःकरण में। इनसे अगर सम्बन्ध-विच्छेद करने की कला आ गयी, सम्बन्ध मान लिया है वह सम्बन्ध न माने तो बेड़ा पार हो जाय

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

चित्तशुद्धि

चित्त अशुद्ध क्यों होता है? जो हो चुका उसकी स्मृति और जो नहीं है उसके चिन्तन से चित्त अशुद्ध होता है। बात जरा सूक्ष्म है। जो हो चुका वह प्रसंग , वह परिस्थिति, वह वस्तु अब उस रूप में रही नहीं। केवल हमारे स्मरण में बची है। बचपन हो चुका, पुण्य चुका, पाप हो चुका, दुःख हो चुका। सास-बहू का झगड़ा हो चुका। झगड़ा करते समय चेहरा जैसा बना था वैसा अब नहीं रहा। वह आवेश नहीं रहा। अब केवल स्मृति रही है कि चार दिन पहले झगड़ा हुआ था।
नहीं रहा। अब केवल स्मृति रही है कि चार दिन पहले झगड़ा हुआ था।

अब स्मृति को मान्यता देंगे , स्वीकृति देंगे तो चेहरा फिर वैसा होने लगेगा। स्मृति को मान्यता नहीं देते तो वह घटना मर गयी। चित्त पर उसका प्रभाव नहीं रहेगा।

हर एक घटना की लकीरें चित्त पर खिंचती है। कैसेट में आप फिल्म का गाना भरो, मृदंग की ध्वनि भरो चाहे हरिभजन भरो लेकिन उसमें लकीरें पडेंगी। पहले जैसी साफ थी वैसी नहीं रहेगी। उसे साफ रखने के लिए क्या करें ? उसमें फिल्म का गाना भी नहीं भरो , मृदंग भी नहीं और भजन भी नहीं, उसे ऐसे ही गुजरने दो।

रिकार्डिंग की कैसेट तो ऐसे ही गुजर सकती है लेकिन चित्तरूपी कैसेट का ऐसे ही गुज़रना संभव नहीं है। अतः चित्त में 'अहं ब्रह्मास्मि.... तत्त्वमसि' का चिन्तन होने दो, अन्य चिन्तन से चित्त मलिन होगा लेकिन आत्मचिन्तन से शुद्ध होगा।

मन कब जीवित रहता है ? जब एक को छोड़कर दूसरे को पकड़ता है तब मन जीवित रहता है। मन दो मिनट के लिए छोड़ना और पकड़ना त्याग दे तो आत्म- साक्षात्कार हो जाये। केवल दो मिनट के लिये। हाँ.... उस समय बताने वाले गुरु चाहिये कि बस..... यही है। अथवा अपनी परिपक्व समझ हो, सदगुरु से सुन रखा हो तो उस तत्त्व का बोध हो जायेगा कि हाँ, यही है। भीतर से ही स्फुरेगा। फिर हजार आदमी आपको निश्चय से हिलायें तो भी आप नहीं हिलेंगे। एक बार आपने ठीक से जान लिया तो बात पूरी हो गयी। भीतर से शक्ति का ऐसा तूफान उठता है कि जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

स्मृतियों और सम्बन्धी के आधार पर चित्त वस्तुओं को अपने पर अंकित करता है । अतः चित्त को निकम्मा मत छोड़ो। बेकार चित्त बन्धन की जाल बुनता रहा है। निकम्मा पतन करता है। वह बाबरा भूत है। उसको कुछ-न-कुछ बढ़िया काम देते रहो।

जब तक चित्त की शुद्धि नहीं है तब तक एकान्त में जाकर बैठेंगे तो वह अपने भीतर और गहरी रेखाएँ बना लेगा। जिसके राग है उसका चिन्तन करके राग गहरा डाल देगा। जिसके साथ द्वेष है उसका चिन्तन करके राग गहरा डाल देगा। जिसके साथ द्वेष है उसका चिन्तन करके द्वेष गहरा डाल देगा। इसलिए जब किसी के साथ झगड़ा हो जाय , अशांति हो जाय, दुश्मनी हो जाय तो एकान्त में न जाकर उन्हीं को खुश करने का कार्यक्रम चालू कर दो।

जिससे शत्रुता हो जाय उसी को खुश करें ? हाँ..... यही तो वीरता है। यही तो पुरुषार्थ है। जिसके लिये बुरे विचार आयें उसके हित का चिन्तन करो। सोचो कि उसका भला कैसे हो, मंगल कैसे हो।

चलते-चलते पैर में काँटा घुस गया। रात को वह पीड़ा दे रहा है। अब सोचते हैं कि पैर की पीड़ा कैसे दूर हो। काँटा निकालने से ही दुःख दूर होगा , अधिक भीतर चुभाने से नहीं। इसी प्रकार किसी से टक्कर हो गयी, द्वेष हो गया और उसको ठीक करने का सोचते हो तो लगा हुआ

काँटा और गहरा चुभा रहे हो। आप उसका बुरा सोच रहे हो और वह आपका बुरा सोच रहा है तो दोनों के चित्त ज्यादा अशुद्ध होंगे। दोनों को खट्टे फल खाने पड़ेंगे। आप उसका कल्याण सोचना शुरु कर दो तो आपके हृदय से शूल निकल जायेगा।

आप अपने शत्रु का कल्याण सोच रहे हो और वह आपका अकल्याण सोच रहा है तो वह सफल नहीं होगा। आवेश में आकर वह आपका अहित कर बैठे लेकिन आपके हृदय में उसके प्रति हित की भावना बनी रहेगी तो उसका हृदय परिवर्तन हो जायेगा। हृदय परिवर्तन नहीं होगा तो उसके पुण्य खतरे में पड़ जायेंगे। फिर प्रकृति उसे ठीक बोधपाठ सिखा देगी। यह बिल्कुल सच्ची बात है।

कोई आपके लिए बुरा सोच रहा है और आप उसका बुरा नहीं सोचते हो तो आपके चित्त में जो खुदना था वह बन्द हो गया, पटरियाँ बनना बन्द हो गया तो उसकी द्वेष की गाड़ी आपके चित्त में चलेगी नहीं। सामने वाला कैसा भी व्यवहार करे लेकिन आपके चित्त में उसकी स्वीकृति नहीं है, आप लेते ही नहीं उसके द्वेष की बात को, तो उसका द्वेष आगे चलेगा नहीं। आपने पटरियाँ बनायी ही नहीं उसके द्वेष की गाड़ी चलने के लिए।

कोई आदमी किसी के लिए फरियाद करता है या किसी से दुःखी होता है तो यह उसकी अपनी कमजोरी है। सामनेवाले का दोष नहीं। सामनेवाले की जैसी बुद्धि होगी वैसा आचरण करेगा ही। जब तक अपनी कमजोरी रहेगी तब तक परेशान करने वाला लोग कहीं-न-कहीं मिल ही जायेंगे। अतः अपने को ही ठीक करना है।

हमारे चित्त में जो व्यर्थ चिन्तन होता है वह हानिकारक है और चित्त में चिन्तन होता है जरूर। तो क्या करें? अद्वैत का चिन्तन इतना तीव्र कर दें कि व्यक्ति के नामरूप उसमें लीन हो जायँ। दुःख मिटाने का यही उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं। अपने को ठीक करने के सिवाय और कोई सही उपाय नहीं।

रामजी वनवास से लौटे तो सर्वप्रथम कैकेयी के पैर पकड़े। ये महापुरुष हैं, भगवान हैं। अपना अहित करने वाले को ज्यादा प्यार करना चाहिये। हित करने वाला तो हमें अपना समझकर हित कर ही रहा है। हमार अहित करने वाला हमको पराया समझता है तभी अहित करता है। उसे प्रेम करो तो वह भी हमें अपना समझने लगेगा।

आपसे जो दूर हैं उनसे ऐसा व्यवहार करो कि उन्हें दूरी न लगे। आपके जो निकट हैं उनके प्रति ऐसी समझ रखो कि उनकी निकटता की आसक्ति न रहे। चित्त में दूरीवालों के प्रति द्वेष की रेखाएँ न पड़ें और निकटवालों की निकटता की आसक्ति न घुसे। इससे चित्त की विश्रांति होगी। विश्रांति से सामर्थ्य आयेगा। सामर्थ्य से परम स्वातंत्र्य के द्वार खुल जायेंगे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आत्मसंयम

वासनाक्षय, मनोनाश और बोध-ये तीन चीजें जिसने सिद्ध कर ली वह पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है।

वासनाक्षय के लिये ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य है। कैसा भी योगाभ्यास करने वाला साधक हो, धारणा, ध्यान, त्राटक आदि करता हो लेकिन यदि वह ब्रह्मचर्य का आदर नहीं करता, संयम नहीं करता तो उसका योग सिद्ध नहीं होगा। साधना से लाभ तो होता ही है लेकिन ब्रह्मचर्य के बिना उसमें पूर्ण सफलता नहीं मिलती। जो लोग 'संभोग से समाधि' वाली बातों में आ गये हैं वे सब रोये हैं। संभोग से समाधि नहीं होती, संभोग से सत्यानाश होता है साधना का। बड़े- बड़े योगी भी संभोग की ओर गये हैं तो उनका पतन हुआ है फिर भोगी की क्या बात करें ? संभोग से यदि समाधि उपलब्ध होती तो करोड़ों मनुष्य कर ही रहे हैं, कीट-पतंग जैसा जीवन बिता रहे हैं। समाधि किसकी लगी? आज तक इस प्रकार किसी को समाधि न लगी है न कभी लगेगी।

राम के सुख के बाद संसार में यदि अधिक- से-अधिक आकर्षण का केन्द्र है तो वह काम का सुख है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँचों विषयों में स्पर्श का आकर्षण बहुत खतरनाक है। व्यक्ति को कामसुख बहुत जल्दी नीचे ले आता है। बड़े- बड़े राजा-महाराजा-सत्ताधारी उस काम-विकार के आगे तुच्छ हो जाते हैं। काम-सुख के लिये लोग अन्य सब सुख, धन, वैभव, पद-प्रतिष्ठा कुर्बान करने के लिये तैयार हो जाते हैं। इतना आकर्षण है काम- सुख का। राम के सुख को प्राप्त करने के लिए साधक को इस आकर्षण से अपने चित्त को दृढ़ पुरुषार्थ करके बचाना चाहिये।

जिस व्यक्ति में थोड़ा-बहुत भी संयम है, ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह धारणा- ध्यान के मार्ग में जल्दी आगे बढ़ जायेगा। लेकिन जिसके ब्रह्मचर्य का कोई ठिकाना नहीं ऐसे व्यक्ति के आगे साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण आ जायें, भगवान विष्णु आ जायें, ब्रह्माजी आ जायें, माँ अम्बाजी आ जायें, सब मिलकर उपदेश करें फिर भी उसके विक्षिप्त चित्त में आत्मज्ञान का अमृत ठहरेगा नहीं। जैसे धन कमाने के लिए भी धन चाहिये, शांति पाने के लिये भी शांति चाहिये, अक्ल बढ़ाने के लिये भी अक्ल चाहिये, वैसे ही आत्म- खजाना पाने के लिये भी आत्मसंयम चाहिये। ब्रह्मचर्य पूरे साधना-भवन की नींव है। नींव कच्ची तो भवन टिकेगा कैसे?

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मनोनाश और वासनाक्षय

ब्रह्मविद्या के अधिकारी दो प्रकार के होते हैं-

कृत उपासक। अकृत उपासक।

कृत उपासक

जो अधिकारी साधक उपासना द्वारा अपने उपास्य देवता का साक्षात्कार होने तक तत्त्वज्ञान या ब्रह्मविद्या आत्मसात् करने के लिए प्रवृत्त होता है वह कृत उपासक कहलाता है। ऐसे कृत उपासक साधकों का वासनाक्षय और मनोनाश तत्त्वज्ञान होने के पूर्व ही उपासना द्वारा काफी मात्रा में सिद्ध हो जाता है। अतः तत्त्वज्ञान होने के बाद उनको जीवनमुक्ति सहज सिद्ध हो जाती है।

जो अधिकारी साधक किसी प्रकार की उपासना किये बिना तत्त्वज्ञान या ब्रह्मविद्या आत्मसात् करने के लिये प्रवृत्त होता है वह अकृत उपासक कहलाता है। आजकल प्रायः सब जिज्ञासु साधक अकृत उपासक ही देखे जाते हैं। तत्त्वज्ञान की महिमा सुनकर उसकी प्राप्ति के लिए उत्सुक हो जाते हैं। असम्प्रज्ञात समाधियोग के बिना ही ऐसे साधक जड़- चेतन का विवेक करके कुछ समय के लिये मनोनाश एवं वासनाक्षय का पुरुषार्थ करते हैं। शमदमादि साधनों से श्रवण, मनन व निदिध्यासन का संपादन करते हैं। इस प्रकार क्रमशः तमाम सांसारिक बन्धनों का नाश करने वाले तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं। इस तत्त्वज्ञान के द्वारा वे अविद्याग्रंथि, सन्देह, कर्म, जन्म और मरणादि सब बन्धनों से आखिर में मुक्त हो जाते हैं लेकिन अभी उनको जीवन्मुक्तावस्था प्राप्त नहीं होती।

कठ एवं मुण्डकोपनिषद् के मंत्रों से भी सिद्ध होता है कि जो पुरुष हृदयरूपी गुहा में ब्रह्मरूप चैतन्य का साक्षात्कार करता है वह अविद्याग्रंथि और हृदयग्रंथि का नाश करके , सब सन्देहों को निर्मूल करके प्रारब्ध कर्म के सिवाय संचि त व क्रियमाण कर्मों का नाश करता है। मन का निरोध होने पर जिस पुरुष को सदा पवित्र रहने वाले आत्मा का साक्षात्कार होता है .... आकाशरूप हृदयगुफा में स्थित सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार होता है उसके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं। वह ऐसे पद को पाता है जहाँ से वापस लौटना नहीं पड़ता। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

दूसरे उपनिषद् भी आत्मज्ञान के द्वारा सब बन्धनों से निवृत्ति की हिमायत करते हैं। इन बन्धनों से निवृत्ति माने विदेहमुक्ति। तत्त्वज्ञान होते ही विदेहमुक्ति माने देह होते हुए भी मुक्ति सिद्ध होती है क्योंकि तत्त्व ज्ञान से पहले अविद्या से कल्पित अविद्या- ग्रंथि आदि बन्धन रहते हैं और तत्त्वज्ञान से अविद्या का नाश , अज्ञान का नाश होने से बन्धनों का भी नाश हो जाता है। आत्मज्ञान से एक बार नष्ट हुए अविद्या व उसके कार्यरूप बन्धन पुनः उत्पन्न नहीं होते।

तत्त्वज्ञान को ढँकनेवाले कारणों के अभाव से विद्वान पुरुष के लिये तत्त्वज्ञान अपना स्वभावसिद्ध स्वरूप बन जाता है।

मनोनाश और वासनाक्षय

अकृत उपासक में से तत्त्वज्ञान सिद्ध करके बने हुए आत्मज्ञानी ने प्रारम्भ में तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिये कुछ समय के लिये मनोनाश व वासनाक्ष य किया था। लेकिन उसके लिये दृढ़ अभ्यास के अभाव से, भोग देने वाले प्रारब्ध कर्मों के कारण से मन व वासना पुनः प्रकट होते हैं। इसलिए अकृत उपासक में से तत्त्वज्ञानी बने हुए पुरुष को तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के लिए यद्यपि पुनः पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता लेकिन मनो नाश व वासनाक्षय के लिये पुरुषार्थ अवश्य करना पड़ता है।

मनोनाश क्या है?

श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण में मुनिशार्दूल महाराज वशिष्ठजी कहते हैं- "हे रघुकुलतिलक श्रीराम ! साक्षी आत्मा की उपाधिरूप मन को साक्षी आत्मा से अलग करके साक्षी आत्मा होना यह मनोनाश है"

मन का नाश करने के दो उपाय हैं- योग और ज्ञान।

योग माने सब वृत्तियों के निरोधरूप असम्प्रज्ञात समाधि। इस असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति सम्प्रज्ञात समाधि से होती है। सम्प्रज्ञात समाधि आत्माकार वृत्तियों के प्रवाहयुक्त अंतःकरण से साक्षी चैतन्य का अनुभव होता है। अस म्प्रज्ञात समाधि में तमाम वृत्तियों का निरोध हो जाने से अंतःकरण शांत हो जाता है। वृत्तिसहित अंतःकरण शुद्ध साक्षीस्वरूप हो जाता है। दोनों समाधियों में इतना ही भेद है।

वासना का क्षय कैसे होता है?

वासना के स्वरूप को जाने बिना वासना का नाश नहीं हो सकता। वासनाक्ष य करने से पहले वासना का स्वरूप जान लेना आवश्यक है। वासना का स्वरूप बताते हुए श्री वशिष्ठजी महाराज कहते हैं-

"अपने अपने देश, काल, आचार तथा कुलधर्म में, अपने स्वभाव में जो अच्छे या बुरे शब्द हैं उनमें जीव का अभिमान होता है। इस अभिमान की दृढ़ भावना से आगे- पीछे का विचार किये बना पदार्थों का ग्रहण किया जाता है। इस ग्रहण से जो सूक्ष्म संस्कार उत्पन्न होते हैं उन्हें 'वासना' कहते हैं।

वासना के प्रकार

वासनाएँ दो प्रकार की होती हैं- शुभ वासना और अशुभ वासना। शुभवासनाएँ तत्त्वज्ञान के साधनरूप हैं और अशुभ वासनाएँ तत्त्वज्ञान की बाधक हैं।

लोकवासनाः 'संसार में मुझे इस प्रकार चलना चाहिये जिससे लोग मेरी निन्दा न करें। सब लोग सदा मेरी वाहवाही करें। सब लोग मुझे अच्छा मानें ' - इन असम्भावित बातों में अभिमान रखना यह लोकवासना कहलाती है। इस लोकवासना की तृप्ति होना बड़ा कठिन है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जैसे अवतारी महापुरुषों की प्रशंसा भी सब लोगों ने सदा के लिये नहीं की। ऐसी महान विभूतियों की निन्दा करने वाले लोग भी थे। साक्षात् ईश्वर की स्तुति भी सब लोग नहीं करते तो जीव की क्या बात करें ? ऐसी लोकवासना मोक्ष की साधक नहीं बल्कि साधक है। इसलिए यह अशुभ या मलिन वासना कहलाती है।

शास्त्रवासनाः शास्त्रवासना तीन प्रकार की होती हैः

शास्त्रों के पठन-पाठन की वासनाः मैं हररोज अमुक शास्त्र का वचन अवश्य करूँगा ही ... अमुक पाठ किये बिना भोजन नहीं करूँगा ... अमुक वाचन-पठन किये बिना सोऊँगा नहीं ... ऐसा अभिमान होना यह शास्त्र के पठन-पाठन की वासना है।

लेकिन सावधान ! यहाँ खास याद रहे कि साधक को साधनाकाल में अन्य स्थूल वासनाओं से मुक्त होने के लिए शास्त्रवचन-पठन-मनन को अपनाना अति आवश्यक है। स्थूल पदार्थों के पीछे भागते चित्त को वापस खींचने से लिये, शुद्ध करने के लिये, शांत करने के लिये ऐसी शास्त्रवासना का स्वीकार करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। परन्तु जब वह साधक मुमुक्षु बनता है, मुक्ति की तीव्र आकांक्षा वाला बनता है, परमात्मा के दिव्य प्रेम में सराबोर होता है तब उसके लिये ऐसे नियम बाधक बनते हैं। अपरिपक्व मनमुख साधक यदि अकाल ही शास्त्र के पठन-पाठन, चिन्तन-मनन की वासना को छोड़ दे और अन्य वासनाओं में घसीटा जाय तो यह उसके लिये बड़ी हानि है।

सदगुरु के सान्निध्य में रहने वाले गुरुमुख साधक का स मय जब ठीक से परिपक्व होता है तब सदगुरु उस उत्तम जिज्ञासु मुमुक्षु साधक की शास्त्रवासना भी छुड़ाते हैं। भारद्वाज मुनि को शास्त्र के पठन- पाठन की वासना थी। इन्द्र ने उनको मोक्ष की बाधक इस अशुभ या मलिन वासना से मुक्त किया था।

अधिक शास्त्रों के वाचन की वासनाः अपनी समझ या अपने मन्तव्य की पुष्टि करने के लिये बहुत सारे शास्त्रों को पढ़कर प्रमाण इकट्ठे करते रहना , अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिए बहुत सारे शास्त्रों के सन्दर्भ इकट्ठे करना यह इस प्रकार की शास्त्रवासना है। दुर्वासा को ऐसी शास्त्रवासना थी। स्वर्ग में इन्द्र की सभा में नारद मुनि ने उनको उपहासजनक शब्द कहकर उनकी यह वासना छुड़ायी थी।

शास्त्रविहित कर्मों के अनुष्ठान की वासनाः

'मैं शास्त्रों के निर्देशानुसार ही कर्म करूँगा। .... शास्त्रविहित कर्मों के अमुक अनुष्ठान करने का मेरा अटल नियम है....' इस प्रकार का अभिमान होना यह उपरोक्त किस्म की वासना है।

शास्त्रों में कहा गया है कि यज्ञयाग शुभ और पवित्र स्थान में करना चाहिए। निदाघ नामक राजा को शास्त्रविहित कर्मों के अनुष्ठान की वासना थी। यज्ञ के लिए पवित्र स्थान खोज करने में उन्होंने पूरी पृथ्वी छान मारी लेकिन उन्हें कोई स्थान पवित्र न लगा। हर स्थान में कुछ-न-कुछ अशुद्धि दिखी। अतः उन्होंने वृक्षों पर एक मंच तैयार करवाया और उस पर यज्ञविधि का प्रारम्भ किया। दुराग्रह भरी प्रवृत्ति मलिन वासना है। उस समय विभु ऋषि ने वहाँ आकर निदाघ राजा को उनके मोक्ष में बाधक बनने वाली उस मलिन वासना से छुड़ाकर शुभ वासना में प्रवृत्त किया।

इस प्रकार ये तीन प्रकार की शास्त्रवासनाएँ अनेक क्लेशों से युक्त एवं मोक्ष की विरोधी हैं तथा अभिमान के कारण हैं। फलतः वे जीव के पुनर्जन्म का कारण बनती है। अतः लोकवासना की तरह यह शास्त्रवासना भी मलिन होने के कारण त्याज्य है।

देहावासनाः देहावासना भी तीन प्रकार की हैः

देह में आत्मशुद्धि की देहवासनाः अपने को देह मानकर जीवन जीना। 'यह जो हाड़-मांस की देह दिखती है वही देह मैं हूँ ....' ऐसी देहात्मबुद्धि से रहना इस प्रकार की देहावासना है। विरोचन राजा को यह वासना थी। उनके सम्प्रदाय वालों में , चार्वाक आदि में अभी तक यह वासना देखी जाती है। जो लोग इस स्थूल शरीर के लालन-पालन में लगे रहते हैं, उसी का शृंगार करते हैं, मृत्यु के बाद भी उसको सुरक्षित रखने का इन्तजाम करते हैं , देह को कब्र में दफनाते हैं उन लोगों में यह देहात्मबुद्धि की वासना है।

प्यारे साधकों ! ईमानदारी अपने भीतर भी जरा- सा झाँक लो। हम भी इन्हीं लोगों की भीड़ में तो नहीं हैं? हम भी अपने को देह तो नहीं मान रहे हैं? अगर मान रहे हैं तो यह गलती सुधारने के उपाय में शीघ्र ही लग जाओ।

देह में गुणाधान की देहवासनाः शरीर में गुणों का सम्पादन करने की वासना। यह वासना दो प्रकार की हैः लौकिक और शास्त्रोक्त।

लौकिक गुणाधान की देहवासनाः शरीर में, इन्द्रियों में अमुक गुण विकसित करने की वासना। जैसे गायक लोग अपना स्वरमाधुर्य बढ़ाने के लिये, वाणी मधुर बनाने के लिये औषधियों का सेवन करते हैं।

शास्त्रोक्त गुणाधान की देहवासनाः गंगा आदि पवित्र नदियों में स्नान करना , शालिग्राम आदि की पूजा करना, विविध तीर्थों का जल ग्रहण करना, इनके द्वारा अपने में गुणों का आरोपण करना और उन गुणों का अभिमान रखना यह शास्त्रोक्त गुणाधान की देहवासना है।

देह में से दोषों की निवृत्ति की देहवासनाः शरीर में से दोषों को दूर करने की वासना। यह वासना भी दो प्रकार की हैः लौकिक व शास्त्रोक्त।

लौकिक दोषनिवृत्ति की देहवासनाः डॉक्टर, हकीम, वैद्य के द्वारा औषधादि लेकर शरीर के रोगों की निवृत्ति करके तन्दुरुस्त रहना यह लौकिक दो षानिवृत्ति की देहवासना है। रामकृष्ण परमहंस में इस वासना का अभाव था इसलिये उन्होंने अपने गले के कैन्सर को दूर करने की कोई चेष्टा नहीं की।

शास्त्रोक्त दोष-निवृत्ति की देहवासनाः स्नान, आचमन इत्यादि द्वारा अशुद्धि , अपवित्रता की निवृत्ति करना यह शास्त्रोक्त दोषनिवृत्ति की देहवासना है।

इस प्रकार मलिन रूप से प्रसिद्ध ऐसी लोकवासना , शास्त्रवासना और देहवासना , उनके प्रकार, पेटा प्रकार, उप पेटा प्रकार सहित हमने देखी। अज्ञानीजन उन वासनाओं को प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करते हैं और मुमुक्षु साधकों के लिये, जिनके हृदय में परमात्म-प्राप्ति की तड़प जग गई है, हृदय में प्रेम में उमड़ रहा है ऐसे विरले साधकों के लिये , आत्मज्ञान-प्राप्ति हेतु ये वासनाएँ विघ्नरूप हैं। ज्ञातज्ञेय विद्वान पुरुष को भी ज्ञान में स्थिति करने में ये वासनाएँ विघ्नरूप हैं।

ये सब वासनाएँ बाह्य है। छल , कपट, अभिमान आदि तथा भगवद् गीता के सोलहवें अध्याय में बतायी हुई आसुरी संपत्ति आदि सब आन्तरिक वासनाएँ हैं। अधिकारी साधक को चाहिए कि सब अनर्थों के मूल समान इन मलिन वासनाओं का नाश करने के लिए दृढ़ पुरुषार्थ करे।

श्री वाशिष्ठजी महाराज कहते हैं- "हे रघुनाथ ! लोकवासना, शास्त्रवासना और देहवासना, ये तीनों 'विषय वासना' कहलाती हैं। उन तीनों का त्याग करके , काम-क्रोधादि आसुरी संपत्तियों का हनन करके मैत्री , करुणा, मुदिता और उपेक्षादि शुभ वासनाओं का सम्पादन करके आत्मस्थ होकर रहो।"

ॐ....! ॐ......!ॐ......!ॐ.....!!!

क्यों? करोगे न हिम्म त ? बार-बार इन शास्त्र- वचनों को विचारकर अपने जन्मसिद्ध अधिकार गुणातीत स्वरूप में जगने का दृढ़ संकल्प करना। विजय तुम्हारी है।

हजार विघ्न-बाधाएँ आयें, घबड़ाओ मत। बीस हजार बाधाएँ आने पर भी एडीसन हताश निराश नहीं हुआ और उसने विद्युत बल्ब की खोज कर ली। ... तो तुम परमात्मा के रास्ते

उत्साहहीन कभी मत होना। तुम्हें जो प्रकाश मिलेगा वह विद्युत के प्रकाश से निराला प्रकाश होगा।

ओ परमात्म-प्रकाश, शाश्वत-प्रकाश पाने वाले पथिक ! कमर कस। आगे चल .... आगे बढ़....! शाबाश.... वीर ! शाबाश....!! अपने को संसारी लोगों की नजर से मत तौल। ॐ...!ॐ...!!....!!!

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अपना अहंकार इतना पिघला दो कि आप शून्य हो जाओ अथवा अपने अहं को इतना व्यापक कर दो, इतने महान् बन जाओ कि आपसे बाहर दूसरा कुछ बचे नहीं, देहदृष्टि रहे ही नहीं। पूर्ण और शून्य दोनों पारमार्थिक दृष्टि से एक ही हैं।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अपनी बुद्धि जन्म- मृत्यु के समर्थन में मत लगाओ। बुद्धि इसमें लगाओ कि, आत्मा नित्य, शुद्ध-बुद्ध, मुक्त चिदानन्द है और वही मैं हूँ।

हरेक वस्तु में पाँच भाव रहते हैं- अस्ति, भाति, प्रिय, नाम, व रूप। अस्ति = है। भाति = जानने में आता है। प्रिय = प्रियता। ये तीन सर्व में समान रूप से हैं और नाम व रूप हर वस्तु में अलग अलग हैं। सबमें से नाम व रूप का बाध कर दें तो अस्ति, भाति, प्रिय सर्व में समान रहेगा। वह हम सबका स्वरूप है।

अपने नामरूप व सारे जगत के नामरूप का बाध करके सर्वत्र आत्म स्वरूप की प्रतीति करते रहना यह श्रेष्ठ योग है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सबसे श्रेष्ठ कर्म क्या है? सारे ब्रह्माण्ड को स्वयं से अभिन्न देखो। अपने को सबसे न्यारा देखो। जैसे मलत्याग करने के बाद सोचते नहीं कि उस मल का क्या हुआ, वह कहाँ गया? इसी प्रकार आत्मस्वरूप में जगने के बाद शरीर, मन आदि का क्या हुआ इसका विचार ही नहीं करना है। उनका आत्यंतिक लय करना है। विचार वही होकर रहो। अन्य कुछ बनोगे तो दुःखी होगे।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

शाबाश धीर ! शाबाश !

धीर परिणाम में मंगल पर , अपने स्वरूप पर दृष्टि रखता है, कष्ट-तपश्चर्या-श्रम पर नजर नहीं रखता। कर्तृत्व पर नजर नहीं, कर्ता के अधिष्ठान पर नजर रखता है। मन्दबुद्धि तत्काल लाभ को देखता है, तुच्छ क्षणिक लाभ से प्रभावित होकर परम लाभ खो बैठता है। मन्द की वृत्ति दूसरे की चर्चा में , भूत-भैरव, मकान-दुकान, बहू-बेटी-बेटा, नाती-पोती, मतलब कि बहिरंग चर्चा में उलझी जाती रहती है। फलतः मन्द अपना भाव भी मन्द कर देता है। धीर परम लाभ पर दृष्टि रखते हुए तुच्छ लाभों की लापरवाही कर देता है।

सत्य प्रादेशिक या तात्कालिक नहीं होता , अनादि अनन्त होता है। सत्य पाने के लिए संयम और सजगता रूपी तप किया जाता है, व्यक्तित्व का होम किया जाता है। व्यक्तित्व बाधित होना आवश्यक होता है। जो अपने छोटे-से-छोटे सुख का, ऐन्द्रिक तृप्ति का त्याग न कर सके वह मन्द है। खाने-पीने-पहनने-रहने की चिन्ता उन्हीं को सताती है जो मन्द हैं। अतः साधक मन्द व्यक्तियों के साथ अपनी तुलना न करे।

धीयं रति इति धीरः ।

जो बुद्धि को अपने पास रखता है , मनोवृत्ति के प्रवाह में बह नहीं जाता वह धीर है। शाबाश धीर ! शाबाश...!!

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ